अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष- 43, अंक- 18, 1-15 मई 2020

गरीबों के सहयोग के बिना अमीर समाज में धन नही कमा सकते। अब वह समय आ पहुंचा है, जब गरीब मजदूरों का उपयोग कई तरह से शतरंज के प्यादों की तरह करने की कोशिशें की जायेंगी। मजदूरों को मित्रों की बड़ी आवश्यकता है। वे नेतृत्व के बिना कुछ नहीं कर सकते। देखना यह है कि यह नेतृत्व उन्हें किन लोगों से मिलता है, क्योंकि उससे ही मजदूरों की भावी परिस्थितियों का निर्धारण होने वाला है। मजदूर इतने भूखे हैं कि उन्हें रोटी के सिवा किसी और रूप में भगवान दिख ही नहीं सकता।

- महात्मा गांधी

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 43, अंक : 18, 01-15 मई 2020

अध्यक्ष
महादेव विद्रोही

संपादक
बिमल कुमार
सहसंपादक
प्रेम प्रकाश
09453219994
संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'
प्रो. सोमनाथ रोडे अरविन्द अंजुम,
रमेश ओझा अशोक मोती

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : ssprakashan.com

शुल्क

एक प्रति	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC Code : UBIN0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. संपादकीय... 2
2. अध्यक्ष की कलम से... 3
3. प्रवासी मजदूरों के सामने दो ही विकल्प... 5
4. भूख क्वारंटाइन नहीं होती दोस्त!... 6
5. कोरोना के बाद की दुनिया... 7
6. बेरोजगारी का आसन्न संकट... 10
7. बेनमी बॉन्डों और सरकारी कर्जों को... 11
8. मेहनतकश और मजदूर वर्ग को भोजन... 13
9. ये कोरे किस्से नहीं... 16
10. सोशल डिस्टेंसिंग शब्द का प्रयोग मत... 17
11. प्रकृति स्वयं अपना उपचार कर रही है... 18
12. गतिविधियां एवं समाचार... 19
13. कविताएं... 20

संपादकीय

श्रम का अवमूल्यन व सभ्यता का संकट

कोरोना वायरस के फैलने से वैश्विक सभ्यता संकट में है। विज्ञान के प्रयत्न भी असहाय दिख रहे हैं। इस दौर में जो वर्ग सबसे बुरी तरह प्रभावित हुआ है, वह श्रमिक वर्ग है। लेकिन आज भी सत्ता व पूंजी के केन्द्रों की प्राथमिकता श्रमिक वर्ग नहीं है। इस व्यापक वैश्विक संकट के दौर में श्रमिकों की भुखमरी व बदहाली को सही तरह से समझना होगा।

इतिहास का एक दौर था कि जब संकट आता था तो श्रमिक वर्ग ही सभ्यता व समाज को टिकाये (बचाये) रखते थे; दूसरों के श्रम पर जीवित रहने वाले परजीवी वर्ग द्वारा निर्मित व्यवस्था व सभ्यता नष्ट होने लगती थी। दुनिया की तमाम प्राचीन सभ्यताओं का नष्ट हो जाना इसका प्रमाण है। भारत क्षेत्र की सभ्यता लंबे समय तक टिकी रही क्योंकि प्रकृति प्रदत्त जीवन आधारों (जैसे जल, जंगल, जमीन, खनिज आदि) के उपयोग से श्रमिक वंचित नहीं किये गये। दुनिया की वे सभ्यताएं नष्ट होती चली गयीं, जिन्होंने श्रमिकों को प्रकृति प्रदत्त आधारों व उत्पादन के साधनों से वंचित कर दिया। परजीवी आधारित सभ्यताएं अंततः नष्ट होती ही हैं।

लगभग 300 वर्ष पूर्व (कुछ विद्वानों के अनुसार 500 वर्ष पूर्व) विश्व भर में एक नयी आर्थिक प्रणाली का उदय होना शुरू हुआ। इस प्रणाली में साम्राज्यवादी देशों में भी और उपनिवेशों में भी, श्रमिक को उत्पादन के प्राकृतिक साधनों से वंचित किये जाने की प्रक्रिया शुरू हुई। फलस्वरूप परजीवी वर्ग का नियंत्रण प्रकृति के स्रोतों पर बढ़ता गया। प्रकृति के स्रोतों पर नियंत्रण दो अन्य प्रक्रियाओं के साथ हुआ—(1) पूंजी का केन्द्रीकरण तथा उस पर नियंत्रण, (2) उत्पादक श्रमिक को, श्रम बेचने वाले मजदूर में तब्दील कर उस पर नियंत्रण।

इस कारण आज स्थिति यह है कि महासंकट आने पर श्रमिक (मजदूर) वर्ग सबसे पहले दुर्दशा का शिकार होने लगा है। साथ ही श्रमिक के पतन के फलस्वरूप पूंजी की असहायता व अक्षमता भी प्रकट होने लगी है। श्रमिक 'कार्यविहीन' होगा, तो पूंजी भी अपनी उत्पादकता खोने लगेगी—यह समझने में पूंजीवाद समर्थक अर्थशास्त्रियों को आज भी दिक्कत हो रही है। कोरोना वायरस प्रभावित अर्थव्यवस्थाओं में लगभग पूर्ण तबाही का विश्लेषण करते हुए इस पक्ष को नजरअंदाज नहीं करना चाहिए।

आज श्रमिक बेहाल हैं। परंपरागत व प्रकृति निर्भर श्रमिक एवं असंगठित क्षेत्र के मजदूरों की स्थिति अधिक दयनीय है, जबकि कुल कामगारों में इनकी संख्या लगभग 93% है। इनमें भी प्रवासी श्रमिकों को अब भुखमरी के कगार पर ला दिया गया है। यदि आप सत्ता और संपत्तिवान के दृष्टिकोण में भेदभाव देखना चाहते हैं तो प्रवासी श्रमिक व प्रवासी परजीवी वर्ग को उनके मूल स्थान पर लाने की नीति को देखें व उसका विश्लेषण करें कि ऐसा क्यों है।

यह समय है कि इस आत्यंतिक दुख की घड़ी में भी श्रमिकों के साथ संवाद बनाये रखा जाये। दुनिया भर के मीडिया व सूचना तंत्र के मुख्य विमर्श के दायरे के बाहर है श्रमिक वर्ग। ऐसे में उनका अपना संवाद तंत्र विकसित हो, यह बेहद जरूरी है। परजीवी वर्ग का नियंत्रण मीडिया व सूचना तंत्र पर भी है। इस कारण वह मूल विषय से ध्यान भटकाने में सफल हो जाता है। उसकी कोशिश होती है कि वह श्रमिक वर्ग को जाति-धर्म आदि आधारों पर बांट सके, व उनके बीच नफरत की दीवारें खड़ी कर सके। इस प्रयास को बेनकाब व बेअसर करना होगा।

महाबली सत्ताओं व अर्थव्यवस्थाओं की बेबसी साफ प्रकट हो रही है। इन्हें महाबली समझने की भूल में सुधार करना होगा। केन्द्रीय सत्ता एवं केन्द्रीकृत पूंजी के नियंत्रण को अस्वीकार करने का समय आ गया है। सत्ता केन्द्रित संबंधों एवं व्यवस्थाओं को बदलने की शुरुआत करें। सत्ता व पूंजी की केन्द्रीयता के हटते ही नये संबंधों की शुरुआत हो सकेगी।

केन्द्रीय व्यवस्था संचालित इकाइयों के भी लाकडाउन हो जाने से हवा और पानी शुद्ध होने लगे हैं। श्रमिक न केवल प्रकृति के स्रोतों के उपयोग का पुनः अधिकार प्राप्त करें, बल्कि प्रकृति के साथ नये संबंधों का अध्याय भी लिखना शुरू करें तो ऐसी प्राकृतिक आपदाओं की पुनरावृत्ति घटेगी, क्योंकि प्रकृति के संतुलन के साथ छेड़छाड़ की संभावना घटेगी।

कोरोना वायरस प्रभावित महामारी से यही सबक लेना होगा कि समाज निर्माण के केन्द्र में श्रमिक आयें, वे प्रकृति के स्रोतों के उपयोग से वंचित न हों और प्रकृति के साथ हमारा सहजीवी संबंध विकसित हो। **–बिमल कुमार**

जेपी की विदेश यात्रा

❑ महादेव विद्रोही

एक समाजवादी विचारक के नाते जयप्रकाशजी का नाम यूरोप और अमेरिका के शिक्षित वर्ग में परिचित रहा है, हालांकि सन् 1929 में अमेरिका से लौटने के बाद वे लगभग 30 वर्ष बर्मा छोड़कर भारत से बाहर नहीं गये थे। पर उन देशों के समाजवादी विचारकों और मजदूर संगठनों से उनका संपर्क बराबर रहा। सन् 1956 के नवंबर में जब मुम्बई में एशियाई मुल्कों के समाजवादियों का सम्मेलन हुआ, तो उस मौके पर इंग्लैंड, आस्ट्रेलिया, इजराइल आदि देशों से भी कुछ समाजवादी मित्र मुम्बई आये थे। उस सम्मेलन में जयप्रकाशजी ने पहली बार अंतर्राष्ट्रीय समाजवादी श्रोताओं के सामने बड़ी दृढ़ता और स्पष्टता के साथ अपना यह विचार रखा था कि सर्वोदय का मार्ग ही वास्तविक समाजवाद है। राजसत्ता के जरिये समाजवाद लाने की कोशिश ज्यादा-से-ज्यादा 'कल्याणकारी राज' तक ही मानव जाति को ले जा सकती है, मनुष्य-मात्र की आजादी, समता और भाईचारे के जो आदर्श हैं, उन तक नहीं।

जयप्रकाशजी के विचारों से और लोकनीति की नयी पद्धति के प्रति उनकी अडिग निष्ठा और विश्वास के कारण विदेश के समाजवादियों में इन बातों को और भी गहराई से समझने और इनके बारे में ज्यादा विचार-विनिमय करने की उत्सुकता पैदा होना स्वाभाविक था। फलस्वरूप कई मित्रों ने उनसे यूरोप आने का फिर से आग्रह किया। इंग्लैंड की दो-तीन शांतिवादी तथा समाजवादी संस्थाओं की ओर से बाकायदा निमंत्रण भी मिला, फलस्वरूप 1958 के अप्रैल महीने के अंत में जेपी कुछ मित्रों के साथ विदेश यात्रा पर गये।

यह यात्रा करीब साढ़े चार महीने तक चली। इस दौरान वे यूरोप और पश्चिम एशिया के विभिन्न मुल्कों में घूमे। इंग्लैंड, फ्रांस, जर्मनी, स्विट्जरलैंड, हालैंड, डेन्मार्क, बेल्जियम, नार्वे, स्वीडन, ऑस्ट्रिया, इटली और ग्रीस के अलावा पोलैंड और युगोस्लाविया, इजिप्ट और इजराइल तथा पश्चिमी एशिया के अरब मुल्कों में भी गये। करीब-करीब सभी मुल्कों में वहां के प्रमुख राजनैतिक नेताओं के अलावा वैज्ञानिकों, समाजशास्त्रियों और अन्य प्रमुख विचारकों के साथ बातचीत तथा विचार-विनिमय का मौका आया। इस दौरान जेपी ने करीब-करीब 50 आम सभाओं को संबोधित किया। प्रसिद्ध परमाणु-वैज्ञानिक प्रो. नील्स बोर और प्रो. ओपेनहायमर, नोबेल पुरस्कार प्राप्त विख्यात फ्रेंच साहित्यकार अल्फ्रेड कामू, गांधीवादी विचारक विल्फ्रेड वैलाक, इटली के दैनिलो

दोलची और इगनेजिओ सिलोने, अरब समाजवादी विचारक माइकेल अफलाक, पोलैंड के डॉ. ऑस्कर लांगे, प्रसिद्ध विचारक साल्वा डी मदरियागा, डेनिस रूजमो, निकोलस नोबोकोब आदि कई लोगों से वर्तमान समस्याओं और मानवीय आदर्शों के बारे में जेपी का व्यक्तिगत विचार-विनिमय भी हुआ।

इस यात्रा में एक विशेष कार्यक्रम ऐसी संस्थाओं में जाने का भी था, जहां अहिंसा और शांति के आदर्शों में विश्वास रखने वाले लोग अपने जीवन में उन आदर्शों को उतारने का प्रयोग कर रहे थे। पश्चिम जर्मनी में ब्यूकेबर्ग फ्रेंडशिप हाउस, ब्रामडन, इंग्लैंड में सोसायटी ऑफ ब्रदर्स केन्द्र, पेरिस में आवे पीयर की प्रेरणा से चल रहे 'चीथड़ा बटोरने वालों के परिवार' और दक्षिण फ्रांस में गांधी तथा विनोबा के पुराने समर्थक लांझा देलवास्तो के आश्रम में भी उनका जाना हुआ। इस विदेश यात्रा के दौरान हुई मुलाकातों और कई घटनाओं का महत्त्व उन सभी के लिए कुछ न कुछ विशेष अर्थ रखता है, जो नया समाज बनाने का सपना देखते हैं या नया समाज बनाने के लिए प्रयत्नशील हैं। उनमें से कुछ का जिक्र यहां करना लाजिमी लगता है।

जेपी अपनी यात्रा के दौरान मिश्र भी गये। मिश्र के राष्ट्रपति नासिर के बारे में उनका ख्याल था कि नासिर कुछ फासिस्ट मिजाज का अधिनायक है और वह सारे अरब देशों पर अपना आधिपत्य जमाना चाहता है। उनकी यह धारणा अखबारों के संवाद पढ़ने से बनी थी। लेबनान, जॉर्डन, इराक आदि में जो क्रांतियां हुईं और उनके बारे में अखबारों में जो कुछ पढ़ने को मिला, उससे उनकी यह धारणा और भी पुष्ट हुई। किन्तु जब वे स्वयं वहां गये और वहां की परिस्थिति का अध्ययन किया, तो उन्हें यह मानने को बाध्य होना पड़ा कि आज दुनिया में शीत युद्ध की आधी जिम्मेदारी इन अखबारों पर है। जेपी कहते हैं, ''इन अखबारों के कारण कितनी गलतफहमी और कितनी अशांति फैलती है, यह कहना मुश्किल होगा। अगर दुनिया भर के अखबार बंद कर दिये जायं, तो मैं समझता हूं कि आज जितनी अशांति है, वह काफी कम हो जायेगी और किसी का कोई बड़ा नुकसान भी नहीं होगा। पर ऐसा होना संभव नहीं है।'' वे आगे कहते हैं कि संयुक्त राष्ट्रसंघ में दुनिया की भलाई चाहने वाले लोग बैठते हैं। ये लोग मिलकर कम से कम एक ऐसी प्रेस एजेंसी या संवाद एजेंसी कायम करें, जो झूठी खबरें न भेजकर वास्तविक समाचार भेजें, तो बहुत अच्छा रहे। ऐसा करने से आज राष्ट्रों के बीच जो तनाव है, वह काफी कम होगा।

जेपी नासिर से पहले मिश्र की क्रांति के एक बड़े नेता अनवर सादात से मिले। दोनों के बीच दो दिन में लगभग 6 घंटे बातें हुईं। सादात

ने जेपी से कहा, ''मैं बहुत लंबे समय से आपसे परिचित हूं। 'डेमोक्रेटिक सोशलिज्म' पुस्तक की प्रस्तावना, जो आपने लिखी है, मैंने

> **मिस्र की क्रांति से कुछ दिन पहले तक मेरा यह विश्वास था कि राजनीति के लिए अगर किसी का कत्ल करना पड़े या क्रांति को सफल करने के लिए खून बहाना पड़े, तो वह उचित है। लेकिन मिस्र की क्रांति के समय एक घटना हुई, जिससे मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया। अब मैं यह निश्चित रूप से मानता हूं कि क्रांति के लिए कत्ल करने की न तो आवश्यकता है और न वह उचित ही है। उस दिन से मैंने यह तय किया कि क्रांति के लिए भी इस तरह खून करना बिलकुल गलत**
>
> nw *–राष्ट्रपति नासिर*

पढ़ी थी। उसके बाद मैं बराबर यह सोचता रहा कि आपसे संपर्क हो। हम आपसे बहुत कुछ सीखना चाहते हैं। समाजवाद को समझने के लिए और राष्ट्र के नव-निर्माण में जुटने के लिए हमें आप लोगों से बहुत प्रेरणा मिल सकती है।'' जेपी की उत्सुकता नासिर के बारे में जानने की थी। उन्होंने सादात से पूछा कि क्या नासिर साहब सारे अरब प्रदेश के तानाशाह बनना चाहते हैं? इस सवाल पर सादात बहुत हंसे। उन्होंने एक बहुत ही दिलचस्प कहानी सुनायी। वे बोले—

''तेईस जुलाई को हमारी क्रांति हुई और सत्ताईस जुलाई को रेव्योल्युशनरी कमेटी की बैठक हो रही थी। रात को बैठक होती थी। कौंसिल के सामने यह प्रश्न था कि हम लोग मिस्र में डिक्टेटरी कायम करेंगे या डेमोक्रेसी कायम करेंगे, 'डिक्टेटरी वर्सेस डेमोक्रेसी' यह बहस थी। हम सभी अनाड़ी थे, पॉलिटिक्स जानने वाले नहीं, बल्कि सब फौज के सिपाही थे। पोलिटिकल पार्टियों से कोई उम्मीद नहीं थी, उनको हमने शर्तें वगैरह दी थीं, लेकिन उसका नतीजा नहीं निकल रहा था। मीटिंग शुरू हुई और सदस्यों की राय ली गयी। हम लोगों में से एक आदमी डेमोक्रेसी के पक्ष में था और आठ आदमी डिक्टेटरी के पक्ष में थे। एक आदमी, जो डेमोक्रेसी के पक्ष में था, वह नासिर थे और बाकी सब दूसरे क्रांतिकारी नेता डिक्टेटरी के पक्ष में थे। सात घंटे बहस हुई। जब करीब-करीब सुबह होने को आयी, तो नासिर ने कहा कि अब वोट ले लो, बहुत बात हुई। वोट लिया गया। नासिर कौंसिल के प्रेसिडेण्ट थे, वैसे प्रधानमंत्री भी थे। वोट लिया गया, तो फिर ज्यों का त्यों नतीजा आया। एक पक्ष में और आठ विपक्ष में, एक तरफ नासिर और दूसरी तरफ बाकी सब लोग। जब वोट का यह नतीजा हुआ, तो नासिर उठकर खड़े हुए, कौन्सिल को 'सैल्यूट' किया और कहा कि ''अब मैं आपसे रुखसत होता हूं। आपके साथ हूं, रेव्योल्यूशन के साथ हूं, लेकिन आपका लीडर नहीं रह सकता। आप किसी दूसरे को रेव्योल्यूशनरी कौन्सिल का प्रेसिडेण्ट चुन लीजिये।' यह कहकर वे अपनी बैरक में चले गये। उनके जाने के बाद एक सन्नाटा छा गया, समझ में नहीं आया कि अब क्या करें। हमारे लीडर तो वे ही थे। उसके बाद एक घंटे और बहस हुई। एक घंटे के बाद फैसला हुआ कि एक डेप्युटेशन नासिर के पास जायेगा और उनसे कहेगा कि 'आप वापस आइये। जो प्रस्ताव रेव्योल्युशनरी कौन्सिल में हुआ, वह रद्द होगा और जो आपका प्रस्ताव था, वह हम मंजूर करेंगे और आपके रास्ते पर चलेंगे'।'' सादात साहब ने जेपी से कहा कि अब आप ही तय कर लीजिये कि नासिर कैसा डिक्टेटर है।

अगले दिन जेपी का राष्ट्रपति नासिर से मिलने का कार्यक्रम था। नासिर साहब अक्सर रात को मुलाकात का समय देते थे। जेपी 10 बजे रात को उनके पास गये। करीब साढ़े 12 बजे तक उनसे दुनिया भर की बातें होती रहीं। जेपी ने इराक की बात उठायी और कहा कि वहां बादशाह का और बच्चों का जो कत्ल हुआ, क्या वह ठीक था? क्या एशियाई मुल्कों में इस तरह के कत्ल ठीक हैं?'' नासिर साहब ने कहा, मिस्र की क्रांति से कुछ दिन पहले तक मेरा यह विश्वास था कि राजनीति के लिए अगर किसी का कत्ल करना पड़े या क्रांति को सफल करने के लिए खून बहाना पड़े, तो वह उचित है। लेकिन मिस्र की क्रांति के समय एक घटना हुई, जिससे मेरा यह विचार बिलकुल बदल गया। अब मैं यह निश्चित रूप से मानता हूं कि क्रांति के लिए कत्ल करने की न तो आवश्यकता है और न वह उचित ही है।

इस संबंध में अपने विचार परिवर्तन की कहानी सुनाते हुए नासिर ने कहा कि इधर जब हम क्रांति की तैयारियां कर रहे थे, तो फरुख के पास फौज का एक जनरल गया और उनसे बोला कि 'फौज में कुछ कान्सपिरेसी (षड्यंत्र) की बू आयी है। अगर बादशाह की आज्ञा हो, तो यह सब हम साफ कर दें।' हमारे गुप्तचरों ने यह खबर मुझे दी। मैंने सोचा कि इससे पहले कि बादशाह कोई कदम उठाये, क्यों न हम ही उस फौज के जनरल को खत्म कर दें। मैंने खुद उस जनरल को समाप्त करने की योजना बनायी। तीन अफसरों के साथ मैं गया। वह जनरल रात को कहीं गया था और बारह बजे घर लौटने वाला था। इस अवसर का मैंने उपयोग किया और उसके घर के पास हम छिप गये। बारह बजे के बाद फौज के उस जनरल की गाड़ी आयी। हम लोग तो निशाना साधे बैठे ही थे। ज्योंही जनरल निश्चिंतता से आगे बढ़ने लगा, त्योंही हमने उस पर गोली दाग दी। वह

> **जब हमारी क्रांति सफल हो गयी, तब हमारे मित्रों ने मुझसे बार-बार यह कहा कि बादशाह फरुख को काहिरा के खुले बाजार में फांसी के तख्ते पर लटकाना चाहिए, ताकि प्रतिक्रियावादी लोगों को सदा के लिए शिक्षा मिल जाय कि देश के साथ गद्दारी करने वाले की यह दशा होती है। पर मैं अकेला वह व्यक्ति था, जिसने इस बात का विरोध किया। फ्रांस में क्रांति हुई, तब राबस्पियर ने बहुत लोगों को मारा। फिर खुद भी मारा गया। फलस्वरूप क्रांति खत्म हो गयी। नेपोलियन आया और सारा 'सेट-बैक' (उलटा) हो गया। जाहिर है कि किसी के कत्ल से क्रांति नहीं हो सकती।** *–राष्ट्रपति नासिर*

चीत्कार करता हुआ नीचे गिर पड़ा। हम लोग तुरंत अपनी गाड़ी लेकर भागे। मैं स्वयं गाड़ी चला रहा था। उसी समय जनरल के घर से

एक बहुत करुण चीत्कार मेरे कानों में सुनाई पड़ी। यह चीत्कार किसी नारी-कंठ की थी। मैं यह चीत्कार सुन-सुनकर द्रवित हो रहा था। मन में रह-रहकर अपने-आपके प्रति ग्लानि पैदा हो रही थी कि मैंने यह क्या किया? अब मैं बार-बार भगवान से यह प्रार्थना कर रहा था कि किसी तरह उस जनरल की मौत न हो, वह ठीक हो जाय। मैं अपनी बैरक में पड़ा-पड़ा रातभर सो नहीं सका। यही एक चिंता मुझे सता रही थी। नारी-कंठ की वह करुण चीत्कार रह-रहकर मेरे कानों में गूंज रही थी। मैं ईश्वर से बार-बार प्रार्थना कर रहा था कि उसकी मौत न हुई हो। मुझे रात भर नींद नहीं आयी। जब सुबह हुई, तो मैं यह खबर जानने को उत्सुक था कि वह जनरल बचा या मरा। अखबार खोला, पर उसमें कोई समाचार नहीं था। कॉलेज गया, तो वहां खबर सुनाई पड़ी कि अमुक जनरल पर रात को हमला हुआ, पर वह बच गया। तब मेरे मन को संतोष मिला। मैंने खुदा से दुआ मांगी। उस दिन से मैंने यह तय किया कि क्रांति के लिए भी इस तरह खून करना बिलकुल गलत है।

जब हमारी क्रांति सफल हो गयी, तब हमारे मित्रों ने मुझसे बार-बार यह कहा कि बादशाह फरुख को काहिरा के खुले बाजार में फांसी के तख्ते पर लटकाना चाहिए, ताकि प्रतिक्रियावादी लोगों को सदा के लिए शिक्षा मिल जाय कि देश के साथ गद्दारी करने वाले की यह दशा होती है। पर मैं अकेला वह व्यक्ति था, जिसने इस बात का विरोध किया। फ्रांस में क्रांति हुई, तब राबस्पियर ने बहुत लोगों को मारा। फिर खुद भी मारा गया। फलस्वरूप क्रांति खत्म हो गयी। नेपोलियन आया और सारा 'सेट-बैक' (उलटा) हो गया। जाहिर है कि किसी के कत्ल से क्रांति नहीं हो सकती।

जो लोग विज्ञान के इस युग में और ऐसे अनुभवों के बाद भी क्रांति के लिए हिंसा को आवश्यक समझते हैं, उनके लिए मिश्र का यह उदाहरण अनुकरणीय है। आरंभ में हिंसा में विश्वास करने वालों को भी अंत में यही लगा कि गांधी का रास्ता ही उपयुक्त रास्ता है। उन्होंने हिंसा के रास्ते को छोड़कर अहिंसा के महत्त्व को समझा, स्वीकार किया और अहिंसा के रास्ते पर चल पड़े। यह अपनी तरह का दुनिया में एक अनुपम उदाहरण है। ❑

प्रवासी मजदूरों के सामने दो ही विकल्प कोरोना या भूख

❑ अरविन्द अंजुम

जब कोई व्यक्ति केवल चमत्कार का ही ख्वाहिशमंद होता है और निर्धारित लक्ष्यों के अनुरूप उसके पास कोई योजना नहीं होती तो प्रायः दुष्परिणामों की आशंका बढ़ जाती है। कोरोना वायरस के विश्वव्यापी कहर से बचने के लिए लॉकडाउन का वैश्विक नुस्खा भारत में भी बिना पूर्व तैयारी के आजमा लिया गया। ठीक वैसे ही, जैसे आज से साढ़े तीन वर्ष पहले 8 नवंबर 2016 को एक चमत्कारिक प्रयोग नोटबंदी के रूप में सामने आया था।

पहले तो नोटबंदी हुई, फिर उससे उत्पन्न समस्याओं को दूर करने के लिए सुबह-शाम अधिसूचनाएं जारी होने लगीं। एक निर्णय के लागू होते होते दूसरी अधिसूचना आ जाती। एक अफरा-तफरी मच गयी चारों तरफ। लेकिन फिर भी गरीब वर्ग सबसे ज्यादा खुश हुआ, जबकि उसे ही सबसे ज्यादा कष्ट भोगना पड़ रहा था, परेशानियां उठानी पड़ रही थीं। उसे सरकार के इस कदम से भरोसा बना था कि काला धन जब्त होगा और शोषक अमीर परेशान होंगे। पर कुछ ही दिनों में सौ से ज्यादा गरीब लोग लाइनों में खड़े-खड़े मर गये और काले धन का कहीं पता नहीं चला। चूहा पकड़ने के नाम पर पूरा पहाड़ खोद डाला गया।

कोरोना के संदर्भ में भी यही फार्मूला नतीजे के तौर पर दिख रहा है। लॉकडाउन के 36वें दिन सरकार ने प्रवासी मजदूरों एवं छात्र-छात्राओं की वापसी के लिए सहमति देकर अपनी गलती की न केवल भरपाई की, बल्कि 24 मार्च से संपूर्ण लॉकडाउन की चमत्कारिक घोषणा की अदूरदर्शिता को भी उजागर किया, चाहे-अनचाहे स्वीकार भी किया। बहरहाल यह एक सही निर्णय था, जो देर से लिया गया।

नोटबंदी एवं लॉकडाउन में एक बुनियादी फर्क है। जहां नोटबंदी में गरीब वर्ग द्वेषवश प्रसन्न था, वहीं इस बार यही वर्ग पहला शिकार बना है। गरीब वर्ग को यह समझने में ज्यादा वक्त नहीं लगा कि उनके सामने दो ही विकल्प हैं—कोरोना से मौत या भूख से मौत। कोरोना वायरस तो उन तक कब पहुंचे, पता नहीं। पर भूख तो इंतजार नहीं करती, उसका हमला तो पहले ही दिन से जारी है। लॉकडाउन के एक हफ्ते बाद से ही तरह-तरह की खबरें आने लगीं। कहीं मकान मालिक इन मजदूर किरायेदारों से अपने घर खाली कराने लगे, तो कहीं इन्हें कारखानों से बाहर निकाला जाने लगा। वे परिस्थिति को संयम के साथ झेलते रहे, पर लॉकडाउन-2 की घोषणा के बाद तो उनके संयम का बांध टूट गया। प्रवासी मजदूर पैदल ही अपने घर जाने के लिए राजमार्गों पर निकल पड़े। लॉकडाउन को सफल बनाने के लिए मदमस्त प्रशासन, इन मजदूरों के साथ सहानुभूतिपूर्वक व्यवहार करने के बजाय, क्रूरता का तांडव करता रहा, मानवता को तार-तार और शर्मसार करता रहा।

लॉकडाउन की वजह से देश भर में फंसे लगभग 10 करोड़ प्रवासी मजदूर, जो मुख्य रूप से हिन्दी प्रदेशों, पश्चिम बंगाल व उड़ीसा से हैं, किसी भी कीमत पर अपने घर पहुंचना चाहते हैं। मरना भी पड़े तो वे अपनों के बीच मरना पसंद करेंगे, इस सामान्य सी बात को समझने में हमारे हुक्मरानों को 36 दिन लग गये। लेकिन अभी भी उनकी घर तक सुरक्षित वापसी की योजना और नीति अस्पष्ट है। फंसे हुए लोगों को निकालने के लिए कहीं तो सरकार खुद आगे बढ़कर व्यवस्था कर रही है, और कहीं लोगों को उनके हाल पर छोड़ दिया गया है। यह तो तय है कि भारत की आर्थिक व्यवस्था की धड़कन इन प्रवासी मजदूरों के कदमों की पदचाप से राजमार्ग थर्रा उठेंगे, अगर हुक्मरान संज्ञाशून्य रहे तब भी। याद रखने की जरूरत है कि गांधीजी ने कहा था कि समाज में निर्धनों के सहयोग के बिना धनवान धन का संचय कर ही नहीं सकता। ❑

भूख क्वारंटाइन नहीं होती दोस्त!

❑ देवेन्द्र आर्य

कैसा समय आ गया है कि पाजिटिव होना ही ख़तरनाक हो गया है। निगेटिव होने के लिए प्रार्थनाएं की जा रही हैं। कोविड-19 जनित महामारी को देश में पांव पसारे लगभग तीन महीने हो चुके हैं और यदि सरकारी आंकड़ों पर अविश्वास न किया जाए तो अनुमान है कि मई के प्रथम सप्ताह तक कुल संक्रमित लोगों की संख्या तैंतीस हजार से ऊपर होगी और एक हजार से ऊपर लोग कोरोना के कारण दिवंगत हो चुके होंगे।

हम विश्व के तमाम देशों की तुलना में अपनी पीठ थपथपा रहे हैं कि हमने 24 मार्च से लाकडाउन करा के कोरोना को नियंत्रित कर लिया है। पर क्या यही सच है? क्या वास्तव में हमने इस महामारी को रोकने के लिए आवश्यक कदम समय से उठा लिए थे? और जो कदम उठाए, क्या वे सुचिंतित कदम थे और उसकी पूरी तैयारी, होमवर्क कर लिया गया था? केंद्र सरकार की अहमन्यता न भी कहें, तो वस्तुस्थिति के प्रति लापरवाही भरा रवैया यह था कि पहले लिये गए तीन निर्णयों में न तो प्रदेशों के मुख्यमंत्रियों को शामिल किया गया था, न ही विपक्ष को। लक्ष्मण रेखा, 18 दिनों का महाभारत युद्ध, ताली थाली शंख, एलईडी बुझा कर 9 मिनट का दीपोत्सव, ये सारे कदम साबित करते रहे कि सरकार कोरोना महामारी के लिए भी पुलवामा, नोटबंदी, जीएसटी जैसे अधकचरे उपायों को ही पर्याप्त मान रही थी। वहीं देश का एक प्रांत केरल इस महामारी को संजीदगी से ले रहा था। नतीज़ा भी सामने है। अब जब स्थितियां हाथ से बाहर हो गयीं और सरकारी व्यस्तता को अहमदाबाद में नमस्ते ट्रम्प कार्यक्रम के लिए आदमकद दीवार खड़ी करने, दिल्ली दंगा भड़काने और उसे रोकने में प्रशासनिक अक्षमता और भोपाल में सरकार बदलने से जोड़ कर देखा जाने लगा तो मुख्यमंत्रियों से राय लेने की सुध आई। सारा निर्णय प्रदेशों पर और सारा संघर्ष आम जनता पर डालकर सरकार क्वारंटाइन हो गयी। नाकामी छिपाने के लिए तब्लीगी जमात का मुद्दा वीभत्स रूप से उछाला गया। वित्तीय मदद की बात छोड़िए, कोरोना आपदा के लिए आवंटित धन से अधिक की उगाही की योजना बना ली गयी। एक साथ दो प्रधानमंत्री सहायता कोष, सरकारी कर्मचारियों के भत्ते में कटौती जैसे उपक्रम किए गए। इस महामारी ने ख़ासतौर से हेल्थ सेक्टर के निजीकरण के दुष्परिणाम सामने ला दिए। आवश्यक चिकित्सा उपकरणों की कमी और खरीद में घोटाले की कहानियां सामने आने लगीं। क्वारंटाइन केंद्रों की दुर्दशा ने संक्रमित लोगों को छिपने पर मजबूर कर दिया। देश की आर्थिक स्थिति का दिवालियापन अब उजगर हो चुका है।

कोरोना महामारी ने समाज के अंतर्विरोधों को अब भयंकर रूप में सामने ला दिया है। साफ दिखने लगा है कि लोकतांत्रिक सरकार पूंजीपति और मध्यवर्ग के हित में सोचती है। पर हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि पूंजीवादी व्यवस्था को सफल बनाने के लिए मध्यवर्ग का उपभोक्ता ही नही, श्रम बेचने वाला मजदूर वर्ग भी चाहिए। देश के विभिन्न इलाकों में कोरोना जनित लाकडाउन के कारण लगभग चालीस लाख मजदूर न केवल फंसे हैं, वरन भुखमरी के शिकार हैं। कल-कारखाने, सार्वजनिक संस्थान, प्राइवेट मिलें, कारखाने, फैक्ट्रियां सब बंद कर दी गयीं और कहा गया कि जो जहां है, वहीं रहे। उसके रहने, खाने और दवा की व्यवस्था सरकार करेगी। पर हक़ीक़त सामने आती गयी और मजदूर बजाय भूख से मरने के, कोरोना से मरने के लिए बीबी बच्चों के साथ हजारों किलोमीटर दूर बसे अपने गांवों के लिए पैदल सड़कों पर निकल पड़े। उनके साथ पुलिस और प्रशासन ने जानवरों की तरह सलूक किया। भूखे, बेघर और बेसहारा मजदूरों पर लाठियां बरसाई गयीं। कोटा में परीक्षा की तैयारी कर रहे उच्च मध्यवर्ग के बच्चों को उनके घर पहुंचाने की चिंता की गयी, पर मजदूर जैसे इस देश के नागरिक ही न हों। इधर कुछ प्रांतों ने छिटपुट प्रयास शुरू किए हैं, जो ऊंट के मुंह में जीरा साबित हो रहे हैं। शहरों की आबादी सुरक्षित रहे, इसके लिए गांवों की आबादी परेशान होती रही। छात्र केवल कोटा में ही नहीं फंसे हैं। लेकिन बाकी जगह फंसे छात्रों के मां बाप की इतनी हैसियत नहीं है कि उनको घर लाने के लिए लाकडाउन के नियमों की धज्जियां उड़ा दी जाएं। यह देश अमीर-गरीब में तो बंटा है ही, अब इंडिया और भारत में भी बंटने जा रहा है। मुस्कुराएगा इंडिया, झेलेगा भारत!

शहर और देहात का यह संभावित बंटवारा बहुत से सवाल खड़े करेगा। लाखों की गरीब मजदूर आबादी ने पिछली तीन माह में जो सौतेला ही नहीं, क्रूर व्यवहार झेला है, बहुत संभव है कि वे अब यह निर्णय लें कि भले ही कम खाएंगे, तंगी में जी लेंगे, मगर अपनों के बीच ही जियेंगे मरेंगे। दुबारा कमाने शहर नहीं जाएंगे। फिर सोचिए कि परजीवी हो चुके शहरों की क्या स्थिति होगी। दाई मजूरिन, सफाई कर्मचारी, फुटपाथों पर ज़रूरत के सामान बेचने वाले, ठेले, फेरी वाले कहां से आएंगे और इनके बिना शहरों की क्या दुर्गति होगी। अगर देहात एकवट हुआ तो आप सब्जी तक को मोहताज़ हो जाएंगे श्रीमान!

इस कोरोना संकट के दौरान शहरों की झोपड़पट्टियों में आबाद इस मजदूर आबादी के प्रति क्या रवैया रहा आपका? वही, इस्तेमाल करो और फेंको! गंदी जगहों और नालों के किनारे आठ बाई आठ की जगह में रहने को अभिशप्त छः आदमियों के परिवार को आप सैनेटाइजेशन और सोशल डिस्टेंशिंग के पालन का फ़रमान ज़ारी कर देते हैं और पालन न हो सकने की सूरत में उन्हें कोरोना फैलाने वाले के रूप में प्रोजेक्ट करते हैं, वैसे ही जैसे जमातियों को आपने किया।

इन चालीस लाख गरीब, बेघर, बेसहारा मजदूरों के अलावा ठेकेदारों द्वारा आपूर्त लगभग दस करोड़ ऐसे श्रमिक हैं, जो छोट मझोले उद्योगों या कंस्ट्रक्शन साइट पर काम करते हैं। काम बंद होने के कारण ये बेरोज़गार हो चुके हैं। इनमें से अधिकांश दुबारा काम पा सकेंगे,

...शेष पृष्ठ 19 पर

कोरोना के बाद की दुनिया

राष्ट्रवाद, निगरानी और तानाशाही बढ़ेगी

अंतरराष्ट्रीय स्तर के नामी-गिरामी विचारकों का कहना है कि कोरोना के बाद दुनिया का नेतृत्व अब अमरीका नहीं, चीन करेगा. कुछ का कहना है कि चीन का नेतृत्व कमज़ोर होगा. कई लोग कह रहे हैं कि इस महामारी से वैश्वीकरण का अंत हो जाएगा. कई लोग उम्मीद कर रहे हैं कि विश्व भर में नए तरह का सहयोग उभर सकता है. दूसरी तरफ़, यह भी कहा जा रहा है कि दुनिया भर में आक्रामक राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिलेगा और मुक्त व्यापार भी कठिन हो जाएगा. मनमाने तरीके से शासन करने वाले नेता कोरोना का फ़ायदा उठाकर खुद को और मज़बूत करेंगे और उनकी निरंकुशता बढ़ेगी, जबकि जनता पर तरह-तरह की पाबंदियाँ और निगरानियाँ थोपी जाएँगी. **–सं.**

युवाल नोआ हरारी

'सेपियंस' जैसी नामी किताब के लेखक हरारी आशंका ज़ाहिर करते हैं कि कोरोना की वजह से सर्विलांस राज की शुरूआत होगी. उन्होंने फाइनेंशियल टाइम्स में एक चर्चित लेख में लिखा है कि सरकारें और बड़ी कंपनियां लोगों को ट्रैक, मॉनिटर और मैनिप्युलेट करने के लिए अत्याधुनिक टेक्नोलॉजी का इस्तेमाल करती रही हैं. लेकिन अगर हम सचेत नहीं हुए तो यह महामारी सरकारी निगरानी के मामले में एक मील का पत्थर साबित होगी. उन देशों में ऐसी व्यापक निगरानी व्यवस्था को लागू करना आसान हो जाएगा, जो अब तक इससे इनकार करते रहे हैं. यही नहीं, यह व्यवस्था 'ओवर द स्किन' निगरानी की जगह 'अंडर द स्किन' निगरानी में भी बदल सकती है'.

हरारी कहते हैं कि अब तक तो यह होता रहा है कि जब आपकी उंगली स्मार्टफ़ोन से एक लिंक पर क्लिक करती है तो सरकार जानना चाहती है कि आप क्या देख-पढ़ रहे हैं, लेकिन कोरोना वायरस के बाद अब इंटरनेट का फ़ोकस बदल जाएगा. अब सरकार आपकी उंगली का तापमान और चमड़ी के नीचे का ब्लड प्रेशर भी जानने लगेगी.

सर्विलांस के ज़ाहिरा तौर पर कई फ़ायदे दिखते हैं. हरारी लिखते हैं कि मान लीजिए कि कोई सरकार अपने नागरिकों से कहे कि सभी लोगों को एक बायोमेट्रिक ब्रेसलेट पहनना अनिवार्य होगा, जो शरीर के तापमान और दिल की धड़कन को 24 घंटे मॉनिटर करता रहेगा. ब्रेसलेट से मिलने वाला डेटा सरकारी फाइलों में जाता रहेगा और उसका विश्लेषण होता रहेगा. आपको पता लगे कि आप बीमार हैं, इससे पहले सरकार को मालूम होगा कि आपकी तबीयत ठीक नहीं है. सिस्टम को यह भी पता होगा कि आप कहाँ-कहाँ गए, किस-किस से मिले, इस तरह संक्रमण की चेन को छोटा किया जा सकेगा, या कई बार तोड़ा जा सकेगा. इस तरह का सिस्टम किसी संक्रमण को कुछ ही दिनों में खत्म कर सकता है, यह सुनने में बहुत अच्छा लगता है, है न?'

इसके बाद हरारी ख़तरों की बात करते हैं. वे लिखते हैं, 'यह याद रखना चाहिए कि गुस्सा, खुशी, बोरियत और प्रेम एक जैविक प्रक्रियाएं हैं, ठीक बुख़ार और खांसी की तरह. जो टेक्नोलॉजी खांसी का पता लगा सकती है, वही हँसी का भी. अगर सरकारों और बड़ी कंपनियों को बड़े पैमाने पर हमारा डेटा जुटाने की आज़ादी मिल जाएगी तो वे हमारे बारे में हमसे बेहतर जानने लगेंगे. वे हमारी भावनाओं का अंदाज़ा पहले ही लगा पाएंगे। यही नहीं, वे हमारी भावनाओं से खिलवाड़ भी कर पाएंगे, वे हमें जो चाहें, बेच पाएंगे—चाहे वह एक उत्पाद हो या कोई नेता. बायोमेट्रिक डेटा हार्वेस्टिंग के बाद कैम्ब्रिज एनालिटिका पाषाण युग की टेक्नोलॉजी लगने लगेगी.

हरारी कहते हैं कि कोरोना वायरस का फैलाव नागरिकों के अधिकारों और कर्तव्यों का बड़ा इम्तहान है. अगर हमने सही फ़ैसले नहीं किए तो हम अपनी सबसे कीमती आज़ादियाँ खो देंगे, हम ये मान लेंगे कि सरकारी निगरानी हमारी सेहत की रक्षा करने के लिए सही फ़ैसला है.

श्लोमो बेन-एमी

इसराइल के पूर्व विदेश मंत्री और टोलेडो इंटरनेशनल सेंटर फॉर पीस के उपाध्यक्ष श्लोमो बेन-एमी ने 'स्कार्स ऑफ वार' और 'वुंड ऑफ पीस : द इसराइल-अरब ट्रैजिडी' नाम की दो किताबें भी लिखी हैं. वे कहते हैं कि लोगों और सामानों की आवाजाही इस दुनिया में हमेशा से रही है. महामारियों की भी मानव सभ्यता में अनिवार्य मौजूदगी रही है. इतिहास में देखा गया है कि हर त्रासदी और महामारी के बाद पुरानी मान्यताएं टूटती हैं और नई चीज़ें सामने आती हैं. पूरी की पूरी व्यवस्था ही शिफ्ट हो जाती है.

श्लोमो ने लिखा है, 'चाहे महामारी का पहले से अंदाज़ा हो या न हो, ऐसी हालत में सरकार की तैयारी की पोल खुल जाती है. महामारी आने पर सरकारें अक्सर हालात संभालने में नाकाम रहती हैं. ऐसा पहले की महामारियों में भी था और कोरोना वायरस की इस महामारी में भी है'.

44 साल की उम्र में साहित्य का नोबेल सम्मान जीतने वाले फ्रेंच-अल्जीरियन लेखक अल्फ्रेड कामू ने इन प्रवृत्तियों का उल्लेख अपने उपन्यास 'द प्लेग' में बख़ूबी किया है. चीन की सरकार ने शुरू में कोरोना वायरस के संक्रमण से जुड़ी सूचनाओं को दबाने की कोशिश की. अमरीकी राष्ट्रपति डोनल्ड ट्रंप ने भी शुरू में इसकी उपेक्षा की. उन्होंने इसके ख़तरों को

कमतर आंका. ट्रंप ने कोविड-19 को सीजनल फ्लू कहा था. इसी तरह कामू के उपन्यास 'द प्लेग' में एक अधिकारी प्लेग को एक विशेष तरह का बुखार कहता है.

इसराइल के पूर्व विदेश मंत्री का मानना है कि नेताओं में दूरदर्शिता नहीं होने के कारण महामारी आने के बाद लोगों के पास बचने के लिए बहुत विकल्प नहीं रहते. मजबूरी में सोशल डिस्टेंसिंग को एकमात्र उपाय के तौर पर पेश किया जाता है. श्लोमो कई मिसालें देकर बताते हैं कि वैक्सीन की ग़ैर-मौजूदगी में तरह-तरह की अफ़वाहें फैलती हैं, कोई ब्लीच पीने की सलाह देता है तो कोई लहसुन खाने की अफ़वाह फैलाता है, कोई कहता है कि मुसलमानों को कोरोना नहीं हो सकता, यहाँ तक कि अमरीका के राष्ट्रपति भी तरह-तरह के इलाजों की कल्पना कर रहे हैं. श्लोमो का कहना है कि यह पैटर्न हर महामारी के समय देखने को मिलता है.

इसराइल के पूर्व विदेश मंत्री याद दिलाते हैं कि कोरोना वायरस से जो अभी आर्थिक संकट खड़ा हुआ है, वह पहले की महामारियों में भी था. दूसरी सदी में आए एंतोनाइन प्लेग ने रोमन साम्राज्य के इतिहास में सबसे भयावह आर्थिक संकट खड़ा कर दिया था. 541-542 ईस्वी में आया जस्टिनियन प्लेग रुक-रुक कर दो सदियों तक आतंक फैलाता रहा और इसने भी बेज़नटाइन साम्राज्य को आर्थिक रूप से तबाह कर दिया.

श्लोमो का कहना है कि महामारी से न केवल अर्थव्यवस्था तबाह होती है, बल्कि समाज में विषमता की खाई भी और गहरी होती है. यथास्थिति को लेकर अविश्वास बढ़ता है. रोग भले अमीर और ग़रीब के बीच भेदभाव न करे, लेकिन ग़रीब जिन हालत में रह रहे होते हैं, उस वजह से वे ज्यादा आसान शिकार बनते हैं, और जो बच जाते हैं उनका जीवन और मुश्किल हो जाता है.

श्लोमो याद दिलाते हैं कि महामारी के समय साजिश की बातों का फैलना भी एक तय पैटर्न है. जब एंतोनियन प्लेग आया तो रोम के शासक ने इसके लिए ईसाइयों को जिम्मेदार ठहराया. ईसाइयों के दबदबे वाले यूरोप में 14वीं सदी में जब ब्लैकडेथ महामारी आई तो इसका दोष यहूदियों पर मढ़ा गया. आज जब कोरोना वायरस की महामारी की चपेट में पूरी दुनिया है तो कई तरह की साजिशों की कहानियां चल रही हैं. इनमें 5जी तकनीक, अमरीकी सेना, चीनी सेना और यहूदियों तक को जिम्मेदार ठहराया जा रहा है.

महामारियों के जाने के बाद कितने बदलाव आते हैं, उनके बारे में श्लोमो कई दिलचस्प मिसालें देते हैं. मसलन, एंतोनाइन और जस्टिनियन प्लेग फैलने के बाद पूरे यूरोप में ईसाई धर्म का प्रसार हुआ था. वहीं ब्लैक डेथ महामारी के बाद लोगों की रुचि धर्म में कम हुई थी और वे दुनिया को मानवता के नज़रिए से ज्यादा देखने लगे थे. यही तब्दीलियां यूरोप में आगे चलकर पुनर्जागरण की वाहक बनीं. स्पैनिश फ्लू के बाद बड़े पैमाने पर मज़दूर आंदोलन शुरू हुए और साम्राज्यवादी ताक़तों के खिलाफ लोग सड़कों पर उतरे. भारत में महामारी से लाखों लोग मारे गए तो इसके बाद भारत में आज़ादी के आंदोलन को हवा मिली.

श्लोमो बेन-एमी आगाह करते हैं कि दो विश्व युद्धों से ये बात साबित हो गई थी कि संकीर्ण राष्ट्रवाद के साथ दुनिया में शांति और स्थिरता नहीं रह सकती. इस महामारी ने संकेत दे दिए हैं कि नेशन-स्टेट और अंतरराष्ट्रीय संस्थाओं के बीच तत्काल एक नए संतुलन की ज़रूरत है. इसके बिना कोराना वायरस की महामारी और भी भयावह रूप लेगी।

अमर्त्य सेन

अर्थशास्त्र के नोबेल पुरस्कार विजेता अमर्त्य सेन ने फ़ाइनेंशियल टाइम्स में लिखा है कि कोरोना वायरस के पहले से ही दुनिया में कम समस्या नहीं थी. दुनिया भर में विषमता चरम पर है. यह विषमता दुनिया के अलग-अलग देशों में भी है और देशों के भीतर भी है. विश्व के सबसे अमीर देश अमरीका में लाखों लोग मेडिकल सुविधा से वंचित हैं. लोकतंत्र विरोधी राजनीति ब्राज़ील से बोलिविया तक और पोलैंड से हंगरी तक में मज़बूत हुई है.

सेन एक ज़रूरी सवाल पूछते हैं, क्या यह संभव है कि महामारी के साझे अनुभवों से पहले की समस्याओं के समाधान खोजने में मदद मिलेगी? इसके जवाब में वे कहते हैं, 'ज़ाहिर है, अगर साथ मिलकर इस महामारी से लड़ने और बाद में संभलने की कोशिश हुई तो कई अच्छी चीज़ें हासिल हो सकती हैं. दूसरे विश्व युद्ध के बाद की दुनिया को मिसाल के तौर पर देखा जा सकता है. लोगों ने इस बात को महसूस किया था कि अंतरराष्ट्रीय सहयोग के बिना शांतिप्रिय और स्थिर दुनिया नहीं हो सकती है.

वे याद दिलाते हैं, 'संयुक्त राष्ट्र, अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष और विश्व बैंक का जन्म दूसरे विश्व युद्ध के बाद ही हुआ. दूसरे विश्व युद्ध के दौरान ब्रिटेन को खाद्य संकट का सामना करना पड़ा था और कुपोषण विकराल समस्या बनकर सामने आया था. ब्रिटेन ने इस पर जीत हासिल की थी. ब्रिटेन ने खाद्य सामग्री में कमी के बावजूद बराबरी की हिस्सेदारी और सोशल सपोर्ट के ज़रिए खाद्य संकट का शानदार प्रबंधन किया था'.

इसके बाद वे एक और ज़रूरी सवाल पूछते हैं, 'क्या वर्तमान संकट को देखते हुए कुछ ऐसी ही बेहतरी की उम्मीद की जा सकती है?' इसके जवाब में वे लिखते हैं, 'किसी भी संकट से निपटने के लिए हम क्या तरीक़ा अपनाते हैं, ये उसी पर निर्भर करता है कि उससे क्या सबक़ हासिल करेंगे. यहां राजनीति सबसे अहम है और साथ में शासक और शासित के संबंध. युद्ध के सालों में भी ब्रिटिश नागरिकों के लिए भोजन और स्वास्थ्य सेवाओं में बेहतरी आई, जबकि 1943 में बंगाल में आए भयावह अकाल में ब्रिटिश इंडिया में 30 लाख लोगों की मौत हुई और ब्रितानी हुकूमत ने इन मौतों को रोकने की कोई कोशिश नहीं की'.

सेन का मानना है कि समानता जैसी बातों पर ध्यान नहीं दिया जा रहा है. अमरीका में काले लोग यानी अफ्रीकी-अमेरीकी कोरोना वायरस के संक्रमण से ज्यादा मर रहे हैं. शिकागो में अफ्रीकी-अमरीकियों की आबादी महज़ एक तिहाई है, लेकिन कोरोना वायरस के

संक्रमण से मरने वालों में इनकी तादाद 70 फ़ीसदी है. जिन देशों में विषमता है, वहां इस महामारी का ख़तरा ज्यादा है. वह चाहे भारत हो या ब्राज़ील या हंगरी.

सेन कहते हैं कि भारत एक और समस्या से जूझ रहा है. लोकतंत्र के मायनों पर हमला किया जा रहा है और मीडिया की स्वतंत्रता पर शिकंजा कसता जा रहा है.

रिचर्ड एन हास

काउंसिल ऑन फ़ॉरेन रिलेशन के प्रमुख रिचर्ड एन हास ने फॉरन पॉलिसी मैगज़ीन में लिखा है कि कोविड-19 से पहले ही अमरीकी मॉडल फेल हो चुका था. उनका कहना है कि अमरीकी मॉडल की नाकामी 2008 की मंदी में भी दिखी थी और इस महामारी में भी साफ़ दिख रही है.

वे कहते हैं, 'कोविड-19 की महामारी एक देश से शुरू हुई और दुनिया भर में तेज़ी से फैल गई. ज़ाहिर है, वैश्वीकरण एक सच्चाई है, न कि पसंद. दरअसल, इस महामारी ने ग़रीब-अमीर, पश्चिम-पूरब से लेकर खुले और बंद सभी देशों की पोल खोल दी. जब दुनिया की दो बड़ी ताक़तों अमरीका और चीन को वैश्विक चुनौतियों का मिलकर सामना करना चाहिए था, तब दोनों देशों के बीच संबंध ऐतिहासिक रूप से ख़राब हैं'.

रिचर्ड कहते हैं कि इस महामारी के बाद हालात और बिगड़ेंगे. दोनों देशों के भीतर लोगों के मन में कोरोना वायरस को लेकर कई कहानियां हैं. अमरीका में ज्यादातर लोग सोचते हैं कि कोरोना चीन ने जान-बूझकर फैलाया है. चीन अब अपने मॉडल को बेचने में लगा है कि कैसे उसने कोरोना वायरस को नियंत्रित किया. दूसरी तरफ़ अमरीका बाकी दुनिया से खुद को काटने में लगा है.

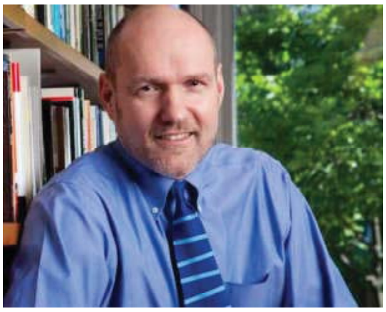

स्टीफ़न एम वॉल्ट

हार्वर्ड यूनिवर्सिटी में इंटरनेशनल रिलेशन के प्रोफ़ेसर वॉल्ट कहते हैं कि इस महामारी से सरकारें और मज़बूत होंगी और पूरी दुनिया में राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिलेगा. सरकारें इससे निपटने के लिए आपातकाल के नियमों को लागू करेंगी और महामारी ख़त्म होने के बाद भी इन क़ानूनों का इस्तेमाल अपने फ़ायदे में जारी रखेंगी. वॉल्ट एक और भविष्यवाणी करते हैं कि कोविड-19 के बाद दुनिया में बड़ी तब्दीली यह आएगी कि पश्चिम की ताक़त पूरब शिफ्ट करेगी. दक्षिण कोरिया और सिंगापुर ने इस महामारी का सामना बेहतरीन तरीक़े से किया है. चीन ने भी शुरुआती ग़लतियों के बाद खुद को संभाल लिया है. दूसरी तरफ़ यूरोप और अमरीका इस महमारी के सामने लाचार दिख रहे हैं. ऐसे में महामारी के बाद दुनिया का नेतृत्व पश्चिम से पूरब की तरफ़ जाएगा. वॉल्ट कहते हैं कि वेस्टर्न ब्रैंड बुरी तरह से प्रभावित होगा. इस महामारी के बाद अंतरराष्ट्रीय सहयोग पर बहुत बुरा असर पड़ेगा. अगर संक्षेप में कहें तो कोविड-19 के बाद की दुनिया कम खुली, कम संपन्न और कम आज़ादी वाली होगी.

फ्रेडरिका मोगेरिनी

यूरोपीय यूनियन में विदेशी मामलों और सुरक्षा नीति की प्रतिनिधि रहीं फ्रेडरिका मोगेरिनी ने प्रोजेक्ट सिंडिकेट में लिखा है कि इस महामारी ने कुछ स्पष्ट संदेश दिए हैं. वे कहती हैं कि चीन के वुहान शहर में महामारी की शुरुआत हुई और अब पूरी दुनिया चपेट में है. मानो किसी एक महादेश में किसी को छींक आई और उसकी चपेट में बाक़ी दुनिया आ गई. महामारी जब आती है तो मुल्कों की सरहदें, लोगों की राष्ट्रीयता, नस्ल, लिंग और धर्म के कोई मायने नहीं रह जाते. हम सबके शरीर से वायरस एक तरह का ही व्यवहार करता है. इसका कोई मतलब नहीं है कि कौन क्या है.

वे कहती हैं कि दूसरी बात यह कि हमारे पड़ोसी की हालत कैसी है, यह आपके भविष्य से संबंधित है. अगर हमारा पड़ोसी मुश्किल में है तो यह हमारी मुश्किल भी है. आज की दुनिया आपस में जुड़ी हुई है, इसलिए किसी और की मुश्किल उसी तक सीमित नहीं रहेगी. सच तो यह है कि एकजुटता ही आज का नया स्वार्थ है. तीसरी बात यह कि वैश्विक समन्वय बहुत ही ज़रूरी है. हमें अंतरराष्ट्रीय संगठनों में निवेश बढ़ाने की ज़रूरत है. हम चम्मच से समंदर ख़ाली नहीं कर सकते, सबको साथ आना होगा.

कोरी शेक्स

इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट फॉर स्ट्रैटिजिक स्टडीज की उपमहानिदेशक कोरी शेक्स का कहना है कि इस महामारी के बाद अमरीका दुनिया का नेतृत्व नहीं कर पाएगा. वह अपने देश के भीतर ही ठीक से महामारी को नहीं संभाल पा रहा है. अमरीकी सरकार ने खुद को अपने हितों तक सीमित कर लिया है. जब पूरी दुनिया मुश्किल में है तो अमरीका खुद को भी नहीं संभाल पा रहा है. अब वैश्वीकरण अमरीका केंद्रित नहीं, बल्कि चीन केंद्रित होगा. इसकी शुरुआत ट्रंप के आने के बाद हो गई थी, जो अब और तेज़ होगी. अमरीकी आबादी का वैश्वीकरण और अंतरराष्ट्रीय व्यापार से भरोसा उठ गया है. **–बीबीसी**

बेरोजगारी का आसन्न संकट
एक ब्लू प्रिंट

❑ वल्लभाचार्य पाण्डेय

लॉकडाउन के दूसरे चरण की घोषणा करते समय प्रधानमंत्री ने देश की जनता से अपनी अपील में सक्षम लोगों को अपने कर्मचारियों का ध्यान रखने एवं उन्हें काम से न निकालने का अनुरोध किया था, लेकिन दुर्भाग्य से ऐसी स्थिति दिख नहीं रही है. असंगठित क्षेत्र के मजदूरों सहित तमाम मल्टीनेशनल कम्पनियों में कार्यरत कर्मचारियों तक की आजीविका पर गंभीर संकट आ खड़ा हुआ है. मजदूर ही नहीं, आईटीआई से लेकर आईआईटी तक के युवाओं की नौकरी या रोजगार खतरे में है। बड़े शहरों में मेहनत करके आजीविका चला रहे लाखों कामगार अपने को असहाय समझते हुए विगत दिनों पलायन को मजबूर हुए। औद्योगिक शहरों में तमाम कार्य असंगठित क्षेत्र के मजदूरों और कारीगरों द्वारा होता है, इन लोगों ने कोरोना संकट के इस कठिन काल को जिस तरह भुगता है अथवा भुगत रहे हैं, उससे लगता है कि आने वाले कुछ वर्षों में उनकी वापसी कठिन होगी. इससे दो तरह की दिक्कतें स्वाभाविक रूप से होंगी, एक तरफ तो बड़े शहरों में इन मजदूरों की कमी के कारण विभिन्न औद्योगिक इकाइयों को पूरी क्षमता से चला पाना मुश्किल होगा, वहीं गाँवों और कस्बों में वापस लौटी मजदूरों और कामगारों की बड़ी संख्या के लिए रोजगार और आजीविका के विकल्प सीमित होंगे।

औद्योगिक इकाइयों में नियमित मजदूरों के अलावा ऐसे बहुत मजदूर होते हैं, जो दैनिक वेतन पर, संविदा पर अथवा सेवाप्रदाता कम्पनियों द्वारा मुहैया कराए जाते हैं। ऐसे मजदूरों की अंतिम मजदूरी का हिसाब काम खत्म होने पर अथवा घर वापसी के समय किया जाता है। लॉकडाउन शुरू होने के दूसरे, तीसरे दिन ही अधिकांश ऐसे ठीकेदार, जिनके पास खुराकी देने के लिए पैसा नहीं बचा, वे मोबाइल बंद करके कहीं गायब हो गये और भूखा प्यासा मजदूर बेबस होकर गाँव लौट चला, यह सोच कर कि शहर में खाए बिना मरने से बेहतर है, अपने गाँव वापस चलना, जहाँ कम से कम उसे नमक रोटी तो मिल ही जायेगी. रास्ते की तमाम दुश्वारियां उसे भविष्य में दुबारा शहर आने से बार बार रोकेंगी. वर्तमान में सार्वजनिक क्षेत्र में भी सेवाप्रदाता कम्पनियों के माध्यम से तमाम कार्य किये जा रहे हैं, जिसमें विभिन्न क्षेत्रों के कुशल कारीगरों को रोजगार मिला हुआ है, कोरोना संकट के चलते कम्पनियों द्वारा उनकी छटनी किये जाने का संकेत स्पष्ट रूप से मिलने लगा है, शहर में रह कर बच्चों को अच्छी शिक्षा दिलाने और थोड़ा बेहतर जीवन स्तर बनाने की चाह, कभी उन्हें शहर लेकर आयी रही होगी लेकिन अब बेरोजगार होकर वापस गाँव में लौट कर बच्चों को उन्हीं सरकारी स्कूलों में भेजना उनकी मजबूरी होगी, जिसकी गुणवत्ता दिनोंदिन गिरती ही जा रही है।

ऐसे स्पष्ट संकेत मिल रहे हैं कि विदेशों में नौकरियां कर रहे लाखों भारतीय युवा अपनी नौकरियों से हाथ धो सकते हैं. रीयल स्टेट, इन्फ्रास्ट्रक्चर, ऑटोमोबाइल आदि सेक्टर में संभावित बड़ी मंदी के कारण भी बेरोजगारी बढ़ेगी. कोरोना के प्रभाव से निजी क्षेत्रों में रोजगार के नये अवसर आने की सम्भावना कुछ दिनों तक नगण्य रहेगी जो बेरोजगारी के संकट को और बढ़ाएगी. इन प्रवासी भारतीयों के लौटने की स्थिति में उनकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप उन्हें नौकरी या रोजगार के अवसर उपलब्ध करा पाना भी एक बड़ी चुनौती होगी।

कोरोना त्रासदी के चलते आने वाले कुछ वर्ष भारत ही नहीं, बल्कि विश्व के तमाम देशों के लिए बहुत भारी पड़ेंगे. जब संक्रमण का दौर समाप्त होगा तो बेरोजगारी और आजीविका का गंभीर संकट सामने मुंह बाये खड़ा होगा और अगर उसका समय रहते निदान नही खोज लिया गया तो स्थिति भयावह हो सकती है. पेट की आग तमाम अपराधों को जन्म दे सकती है, जिससे सामाजिक तानाबाना डांवाडोल हो सकता है. ग्रामीण क्षेत्रों में रोजगार की समस्या के अलावा पारिवारिक असंतोष, सम्पत्ति का बंटवारा, राजस्व का विवाद, महिलाओं के प्राति अपराध, घरेलू हिंसा, नशाखोरी और विषाद जैसी कुछ अन्य सामाजिक समस्याओं में भी स्वाभाविक वृद्धि हो सकती है। इसी प्रकार की समस्या छोटे शहरों और कस्बों में भी निश्चित रूप से बढ़ेगी। इस संभावित समस्या से निबटने के लिए सरकार को प्रभावी नीतियां बनानी होंगी। ऐसी नीति और योजनाएं, जो मजदूर और कामगार को उसके कस्बे या गाँव में सम्मानजनक रोजगार और आजीविका का अवसर सुनिश्चित करे, जिससे उसकी महानगरों की जलालत भरी जिन्दगी की ओर वापस लौटने की मजबूरी न रहे।

कोरोना संकट के इस दौर से उत्पन्न होने वाले इस सामाजिक संकट का निराकरण हमें समय रहते ही खोजना होगा। इस दिशा में कुछ सुझाव व्यवहारिक हो सकते हैं. गांव और कस्बे के स्तर पर रोजगार और आजीविका के छोटे अवसरों की उपलब्धता बने, इसके लिए छोटी पूँजी से लगने वाली इकाइयों की स्थापना हेतु सहज, सस्ता और सुलभ ऋण उपलब्ध करांया जा सकता है. सार्वजनिक और निजी क्षेत्र को भी छोटी और घरेलू इकाइयां लगाने के लिए प्रेरित किया जाय. मनरेगा का दायरा बढ़ाया जाय और इसी तर्ज पर शहरी अकुशल श्रमिकों के लिए रोजगार गारंटी योजना लाई जाय. कृषि और सहायक उद्योग में अधिकतम रोजगार के अवसर तलाशने होंगे. इसके लिए उचित प्रशिक्षण और प्रोत्साहन देना होगा. बड़े शहरों में रहने वाले मजदूरों और कामगारों के रुकने, रहने के लिए पर्याप्त संख्या में रैन बसेरों और

सामुदायिक भवनों की स्थापना करनी होगी। तकनीकी युक्त कुशल कामगारों को स्वरोजगार के लिए प्रेरित करने के साथ ही उन्हें स्थानीय स्तर पर ऐसे अवसर उपलब्ध कराने होंगे, जिनसे उनकी योग्यता और क्षमता के अनुरूप रोजगार मिल सके. ग्रामीण क्षेत्रों, छोटे कस्बों में उच्च स्तरीय गुणवत्तापूर्ण शिक्षा और स्वास्थ्य के संसाधन मुहैया कराने होंगे, जिससे शहरों में बसने की प्रवृत्ति पर अंकुश लगे. सरकारी स्कूलों और स्वास्थ्य केन्दों की गुणवत्ता बढ़े और सभी के लिए समान और बेहतर शिक्षा तथा स्वास्थ्य की सुविधा उपलब्ध हो. असंगठित क्षेत्र के मजदूरों का अनिवार्य पंजीकरण और उनका पहचान पत्र बनाने का कार्य जिम्मेदारी से करना होगा, इसके लिए पहले से उपलब्ध श्रमिक कानूनों को प्रभावी ढंग से लागू करना होगा. बड़े कार्पोरेट घरानों को मिलने वाली छूट और सुविधा में कमी करके उसे छोटे उद्यमियों की तरफ हस्तांतरित करना होगा. इस धन से नियत काल तक बेरोजगारी भत्ता दिए जाने के बारे में भी सोचा जा सकता है. बड़े शहरों की तरफ मजदूरों के मौसमी आवागमन का अध्ययन करके उनकी संख्या के अनुसार यातायात के समुचित साधन सुनिश्चित कराने की व्यवस्था करनी होगी, जिससे भविष्य में जो मजदूर कामगार बड़े शहरों को जाना चाहें, उनको सम्मानजनक मानवीय सुविधाएं मिलें. जिन इलाकों में अधिक समस्या हो रही हो, वहां पंचायत स्तर पर मजदूरों व कामगारों की समस्याओं का निराकरण करने, उनको सुझाव देने और मार्गदर्शन के लिए सहायता केन्द्रों की व्यवस्था किया जाना उनके लिए काफी सहायक हो सकेगा. लॉकडाउन के कारण ठप होने वाली छोटी इकाइयों को दुबारा पूरी क्षमता से चलाने के लिए आवश्यक राहत पैकेज की व्यवस्था करनी होगी. प्रवासी भारतीयों को देश में निवेश और रोजगार के पर्याप्त अवसर मुहैया कराने के लिए प्रभावी नीति बनानी होगी।

हमारे देश का सौभाग्य है कि हमारी श्रम शक्ति में अदम्य साहस और धैर्य है, इसी के बल पर निस्संदेह हम आने वाले कठिन दौर से देश और समाज को उबार ले जाने में सफल होंगे। ❑

पीएम केयर्स

बेनामी बॉन्डों और सरकारी कर्जों को चुकता करने में इस्तेमाल किया गया राहत कोष का पैसा

प्रधानमंत्री राहत आपदा कोष होने के बावजूद पीएम मोदी ने अलग से पीएम केयर्स फंड क्यों बनाया, उसकी तस्वीर अब धीरे-धीरे साफ होने लगी है। पिछले दो सालों के भीतर उस फंड के साथ की गयी कारगुजारियों ने इसको और स्पष्ट कर दिया है।

प्रधानमंत्री राहत कोष की दस साल की बैलेंस शीट बताती है कि राहत देने के मामले में पूर्व प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी ढीले थे। लेकिन नरेंद्र मोदी ने तो उसका गैरकानूनी और बेजा इस्तेमाल करना शुरू कर दिया। उन्होंने जनता के ऊपर खर्च करने के लिए दान में मिले पैसे को न केवल बेनामी चीजों में लगाया, बल्कि उससे सरकारी लोन बाँटने जैसा अपराध भी किया, जो अंततः सीधे-सीधे कॉरपोरेट के लिए मददगार साबित हुआ। इस पूरे मामले की छानबीन को तीन हिस्सों में बांटा जा सकता है। इसके पहले हिस्से में हम आपको बताते हैं कि कैसे साल 2017 से ही पीएम मोदी ने आपदा राहत कोष का पैसा बेनामी चीजों में निवेश करना शुरू कर दिया था।

प्रधानमंत्री राहत कोष की साल 2009 से साल 2019 तक की बैलेंस शीट वेबसाइट के अबाउट पीएमएनआरएफ सेक्शन में पड़ी हुई है। यह बैलेंस शीट बताती है कि नरेंद्र मोदी ने साल 2016-17 में कुल 2750 करोड़ रुपये बैंकों के टायर टू बॉन्ड और फिक्स डिपॉजिट में खर्च किए। इसके बाद साल 2017-18 में उन्होंने इसमें से 1000 करोड़ रुपये के बॉन्ड या तो बेच दिए या फिर कहां और किसे दिए, इसका कोई हिसाब नहीं है। साल 2017-18 की बैलेंसशीट यह भी दिखाती है कि इस साल भी 1750 करोड़ रुपये बैंकों के टायर टू बॉन्ड और फिक्स डिपॉजिट में लगाये गये।

पिछले साल के बैलेंस यानी साढ़े सत्रह सौ करोड़ रुपये को साल 2018-19 की बैलेंस शीट में लाया गया है और इस साल के बैलेंस को जीरो कर दिया गया है। यानी यह साढ़े सत्रह सौ करोड़ रुपये भी गायब हैं। साल 2016-19 में ये पैसे पीएम मोदी ने कहां खर्च किए, इसकी जानकारी बैलेंस शीट में कहीं नहीं है।

आर्थिक मामलों के जानकार बताते हैं कि टायर टू बॉन्ड बैंकों की दोयम दर्जे की पूंजी होती है। जोखिम भरा होने के साथ ही इनका मूल्यांकन फिक्स नहीं होता है। हालांकि ब्याज ज्यादा मिलता है, लेकिन इसे असुरक्षित निवेश माना जाता है। बैंक अपने दोयम दर्जे की पूंजी को स्टेटमेंट में भी नहीं दिखाते हैं। राहत कोष के पैसे को निवेश में डालना एक किस्म का सट्टा है और जनता से मिले दान के पैसे का कम से कम सट्टा या जुआ नहीं खेला जा सकता है। यह अपने आप में न केवल गैरकानूनी है, बल्कि अपराध की श्रेणी में भी आता है।

आरटीआई कार्यकर्ता असीम तकयार प्रधानमंत्री राहत कोष को मिले दान का हिसाब जानने की कानूनी लड़ाई लड़ रहे हैं। जब उन्होंने इसका हिसाब जानने की कोशिश की तो पीएमओ ने उन्हें कहा कि यह सूचना नहीं दी जा सकती क्योंकि यह पब्लिक इन्ट्रेस्ट में नहीं है और इसकी वजह से दान देने वाले की और इस दान से जिन्हें फायदा पहुंचा, उनके भी जीवन में अनुचित आक्रमण हो सकते हैं। इसके बाद असीम तकयार ने अदालत का रुख किया। मई 2018 में उनकी याचिका पर दिल्ली हाईकोर्ट की दो जजों की बेंच ने एक खंडित या जिसे कहें कि बंटा हुआ फैसला दिया। इस बेंच के एक जज जस्टिस ए. रवींद्र भट्ट ने कहा कि प्रधानमंत्री राहत कोष एक पब्लिक अथॉरिटी है, इसलिए असीम तकयार को पूरी सूचना मिलनी चाहिए। जबकि बेंच के दूसरे जज जस्टिस सुनील गौर ने कहा कि प्रधानमंत्री राहत कोष पब्लिक अथॉरिटी नहीं है और यह आरटीआई के दायरे में नहीं आती, इसलिए असीम को इसके बारे में सूचनाएं नहीं दी जा सकतीं। दोनों ही जजों ने हाईकोर्ट के चीफ जस्टिस को मामले को तीसरे जज को रेफर करने की सलाह दी। अब इस मामले की सुनवाई 15 जुलाई 2020 को होनी है।

प्रधानमंत्री राहत कोष की वेबसाइट पर

साल 2009 से लेकर साल 2019 तक की बैलेंस शीट और ऑडिटिंग उपलब्ध है, जिसे कोई भी चेक कर सकता है। जनता के दान के पैसे की ऑडिटिंग कैग को करनी चाहिए थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ है। प्रधानमंत्री राहत कोष के हिसाब-किताब का जिम्मा सार्क एंड एसोसिएट्स चार्टर्ड एकाउंटेंट्स को दिया गया है, जिसका ऑफिस उत्तर प्रदेश के नोएडा के सेक्टर 78 में है। यह जिम्मा इस फर्म को किस सन् में दिया गया और इसके लिए इस फर्म को कितना भुगतान किया जाता है, इसकी कोई जानकारी प्रधानमंत्री राहत कोष की वेबसाइट पर नहीं है।

2009-10 में मनमोहन सिंह सरकार ने तकरीबन 1200 करोड़ के आस-पास की रकम सुनामी राहत में खर्च की। बाढ़ राहत और उड़ीसा में आये तूफान से पीड़ितों की मदद भी गयी। इस साल जनता ने कुल तकरीबन साढ़े सैंतीस करोड़ रुपये दान में दिए थे और सवा सोलह सौ करोड़ रुपये इसके पास पिछला बैलेंस था। काफी पैसे फिक्स डिपॉजिट से आए ब्याज से भी मिले। साल 2010-11 में लेह में बादल फटने पर सहायता दी गई, लोगों को अस्पताल का खर्च दिया गया, बाढ़ से राहत दी गई, सांप्रदायिक दंगों में बरबाद हुए लोगों का पुनर्वास किया गया, बंगाल, उड़ीसा में आए तूफान और सुनामी से राहत में दिया गया, मल्टीमीडिया रिसर्च सेंटर बनाया गया तथा जम्मू कश्मीर में कंप्यूटर लैब और लाइब्रेरी बनाई गई। इसमें भी तकरीबन सवा 18 सौ करोड़ रुपये खर्च किए गए। इस साल जनता ने लगभग साढ़े 28 करोड़ रुपये दान में दिए, बाकी के पैसे मनमोहन सिंह ने इन्वेस्टमेंट से निकाले। साल 2011-12 में भी इन्हीं चीजों में यह रकम खर्च की गई और इस साल इसमें बाल बंधु योजना को जोड़ा गया। इस साल पौने तेरह सौ करोड़ रुपये आपदा राहत से दिए गए और जनता का दान सवा बाइस करोड़ रुपये के आसपास रहा। यहां भी बाकी का डिफरेंस इन्वेस्टमेंट से मिले ब्याज और दूसरी चीजों से पूरा किया गया।

साल 2012-13 में भी इन्हीं मदों में राहत के लिए पैसे दिए गए। इस साल सिक्किम में भूकंप, महाराष्ट्र में रेप के बाद मारी गई तीन बहनों और केरल में आए तूफान में राहत दी गयी। इस साल कुल सवा 18 सौ करोड़ रुपये आपदा राहत में खर्च किए गए और जनता की ओर से तकरीबन साढ़े 17 करोड़ रुपये दान में मिले। साल 2013-14 में राहत कार्यों में लगभग साढ़े 29 करोड़ रुपये खर्च किए गए। हालांकि इस साल आश्चर्यजनक तरीके से जनता ने अपना दान बढ़ा दिया और इस साल दान में भारत सरकार को तकरीबन 376 करोड़ रुपये मिले। साल 2014-15 में जम्मू कश्मीर में आई बाढ़ के अलावा सांप्रदायिक और एथिनिक हिंसा यानी कि क्षेत्रवादी हिंसा से प्रताड़ित लोगों को मदद दी गई। इस साल मदद में कुल तकरीबन 372 करोड़ रुपये दिए गए और जनता ने भारत सरकार को साठ करोड़ रुपये के आसपास दान में दिए।

साल 2016-17 में राहत कार्यों के मद तो यही रहे, लेकिन इसमें जम्मू कश्मीर में आई बाढ़ के लिए 294 करोड़ रुपये अलग से मेंशन किए गए हैं। इस साल कुल मदद 204 करोड़ रुपयों की दिखाई गई है और जनता ने दान में तकरीबन 245 करोड़ रुपये दिए हैं। यानी जितने पैसे दान में मिले, उतना खर्च नहीं किया गया, उल्टे ये पैसे और पहले के इन्वेस्टमेंट से रिलीफ फंड को जो पैसा मिला, उसमें से साढ़े 27 सौ करोड़ रुपये बेनामी बांडों में लगा दिए गये, जो अपने आप में अपराध है। साल 2017-18 में बाढ़, भूकंप और प्राकृतिक आपदा, कम्युनल और एथिनिक वॉयलेंस, मेडिकल हेल्प और साइक्लोन के पीड़ितों को कुल 18 सौ करोड़ रुपये दिए गए। यह वही साल है, जब पीएम मोदी ने दान में मिले पैसे को बेनामी बांडों में लगाया था। उसे बेचना तो शुरू किया गया, लेकिन बेचने से मिली रकम कहीं भी बैलेंस शीट में नहीं दिख रही है। इस साल जनता ने दान में करीब 236 करोड़ रुपये दिए।

प्रधानमंत्री आपदा राहत कोष में सबसे बड़ी आपराधिक हेर फेर साल 2018-19 में मिली। इसे आप भी राहत कोष की वेबसाइट पर जाकर देख सकते हैं। इस साल प्रधानमंत्री ने दान के पैसे में से 13 सौ करोड़ रुपये राज्यों को उधार दिए हैं और आपदा राहत के नाम पर उन्होंने कुल सोलह करोड़ रुपये इंडिविजुअल मेडिकल और हॉस्पिटल खर्च के लिए लोगों को दिए हैं। क्या कोई है ये सवाल करने वाला कि हमने जो पैसा मुसीबत के मारे लोगों की मदद के लिए दिया था, पीएम उससे उधार क्यों चुकता कर रहे हैं? सरकार जो उधार लेती है, क्या वह राष्ट्रीय आपदा है, जिसे चुकाने के लिए मोदी जी आपदा राहत कोष से पैसे दे रहे हैं? आपकी राजनीतिक प्रतिबद्धता किसी भी पार्टी के साथ हो सकती है, लेकिन आप इस बात से तो सहमत ही होंगे कि आपके खून पसीने की कमाई अगर कहीं लगे तो उसी काम के लिए लगे, जिस काम के लिए वह है।

प्रधानमंत्री राहत कोष की वेबसाइट खोलते ही एक ग्राफ सामने आता है, जो यह बताता है कि पिछले दस सालों में कितना पैसा इस कोष में था और कितना खर्च किया गया। नरेंद्र मोदी ने अपनी सरकार के पहले साल में राहत कार्यों के नाम पर थोड़ा ठीक खर्च किया और इस साल सरकार ने राहत कोष में उपलब्ध कुल पैसों का तकरीबन 75 फीसद राहत कार्यों के लिए दिया। लेकिन इससे अगले साल से पीएम ने राहत कोष में उपलब्ध कुल पैसों का एक चौथाई ही खर्च किया। ऐसा इसलिए क्योंकि उन्हें ये पैसे बेनामी बांडों में लगाने थे, जैसा कि इस साल की बैलेंस शीट हमें बताती है। इससे अगला साल पिछले साल से भी ज्यादा शर्मनाक रहा और मोदी जी ने अपने राहत कोष में मिले कुल पैसों का एक चौथाई से भी कम खर्च किया। लेकिन पिछले दस सालों में सबसे शर्मनाक रहा साल 2018-19, जब मोदी जी ने कुल पैसों का पांचवा हिस्सा भी राहत कार्यों में नहीं लगाया।

आपको याद होगा कि इस साल केरल में भयंकर बाढ़ आई थी। केरल मदद मांगता रह गया, लेकिन मोदी जी ने मदद देने से इन्कार तो किया ही, साथ ही ऐसा इंतजाम भी किया कि केरल को कहीं बाहर यानी दूसरे देशों से भी मदद न मिलने पाए। इन हालात में कोई यह अच्छे से समझ सकता है कि नरेंद्र मोदी ने पीएम केयर्स फंड इसलिए खोला, क्योंकि प्रधानमंत्री राहत कोष के साथ उन्होंने जिस तरह की आपराधिक हरकत की है, वह लाख कोशिशों के बाद भी छुपायी नहीं जा सकती थी। पीएम केयर्स फंड की प्रधानमंत्री राहत कोष की तरह कोई वेबसाइट भी नहीं है और न ही यह बताया गया है कि इसकी ऑडिटिंग कैग करेगा या सार्क एसोसिएट्स की तरह कोई और फर्म करेगी।

–जन चौक से

मेहनतकश और मजदूर वर्ग को भोजन की उपलब्धता सुनिश्चित कराए भारत सरकार- ज्यॉं द्रेज

कोरोना संकट के इस भयावह दौर में देश की बहुत बड़ी आबादी भूख, भोजन के अभाव और पोषण की समस्या से जूझ रही है. इसने लोगों की बचत, आमदनी और कमाने की क्षमताओं पर करारी चोट की है. बेल्जियम में पैदा हुए भारतीय अर्थशास्त्री ज्याँ द्रेज़ न सिर्फ भारतीय गांवों में पसरी गरीबी और रोजमर्रा की जिंदगी का बुनियादी विश्लेषण करते हैं, बल्कि अपने इस काम को वे जमीनी फील्डवर्क और आंकड़ों के विश्लेषण से भी पुख्ता करते हैं. पेश है वर्तमान हालात पर तीस्ता सीतलवाड के सवाल और ज्यां द्रेज के जवाब। **–सं.**

वर्षों से आप जो लिख रहे हैं, उसे लोग बेहद संजीदगी से लेते रहे हैं. लोगों की इस पर बारीक नजर है. पिछले कुछ हफ्तों में तो लोगों ने आपके लेखन पर और भी ज्यादा ध्यान देना शुरू किया है. देश की समूची आबादी पर अचानक थोपे गए इस लॉकडाउन का क्या असर होगा, या ये कहें कि क्या असर हो रहा है?

इस लॉकडाउन का भारत की बड़ी आबादी पर भयावह असर हुआ है. आपको पता है कि भारतीय श्रमिकों में सबसे बड़ा हिस्सा असंगठित (अनौपचारिक) क्षेत्र के कामगारों का है. असंगठित क्षेत्र में काम कर रहे लोगों के एक बड़े हिस्से का रोजगार छिन गया है. बहुतों को उनके किए गए काम का पैसा भी नहीं मिला है. प्रवासी मजदूरों का बहुत बड़ा हिस्सा कई जगह फंसा हुआ है. ये लोग कैंपों में बहुत खराब स्थिति में रह रहे हैं. लोग अपने घरों तक नहीं पहुंच पाए हैं. और लगता नहीं है कि हालात जल्दी ठीक होंगे. अगर लॉकडाउन में छूट दी भी जाती है, तो भी खत्म हो चुके रोजगार इतनी जल्दी दोबारा पैदा होने से तो रहे. देश में फिलहाल जो हालात हैं, उनमें इतनी जल्दी लॉकडाउन में छूट की गुंजाइश भी नहीं दिख रही है. अगले कुछ महीनों में देश के करोड़ों लोग और परिवार नजर आने वाले हैं, जिनके पास रोजी-रोटी का कोई साधन नहीं होगा. दोबारा जिंदगी शुरू करने के लिए उनके पास बेहद थोड़े संसाधन होंगे. ऐसे में उनकी जिंदगी काफी कुछ सरकार की ओर से चलाई जाने वाली योजनाओं की मोहताज बन कर रह जाएगी.

ऐसे में क्या किया जाए? कुछ स्कीमें लाई गई हैं. कैश ट्रांसफर शुरू किया गया है. लेकिन जहां मैं रहती हूँ, जैसे मुंबई, वहां बड़ी तादाद में प्रवासी मजदूर हैं. कंस्ट्रक्शन मजदूर हैं. लेकिन सबको राशन नहीं मिल रहा है. क्योंकि सबके पास राशन कार्ड नहीं हैं. मजदूर भी यहां-वहां बिखरे हुए हैं. एक जगह तो रहते भी नहीं हैं. कोई शेड में रह रहा है. कोई कहीं किसी झुग्गी में, तो कोई किसी बस्ती में. कितने लोग हैं और कौन कहां रह रहे हैं, इस बारे में कोई डेटा नहीं है. कोई मैपिंग नहीं हुई है. ऐसे में उनके लिए कौन सी स्कीम लाई जाए?

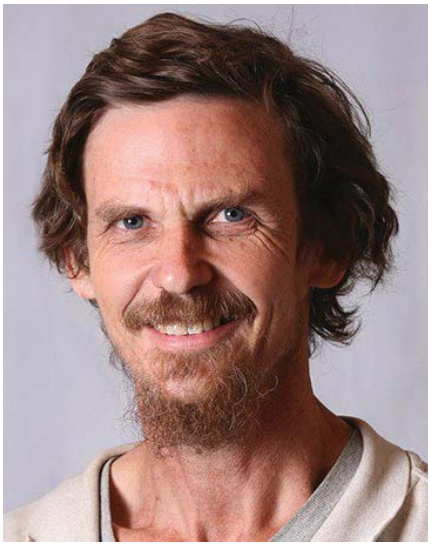

इस वक्त एक वर्ग पर लॉकडाउन का बहुत ज्यादा बोझ है. दूसरे वर्ग पर काफी कम है. फिलहाल जो नीतियां बन रही हैं, वे उस वर्ग या उसके लोगों के प्रभाव में बन रही हैं, जो गरीबों का ध्यान रखने के बजाय, खुद को संक्रमण से बचाने में लगे हैं. लिहाजा इस वक्त ये जरूरी है कि संक्रमण से बचने के लिए लॉकडाउन लागू करने के अलावा लोगों की जीविका सुरक्षित करने के लिए भी कदम उठे. ताकि देश में और भी अधिक गरीबी और भूख न बढ़े. देश में काफी अनाज बगैर इस्तेमाल के पड़ा है, सरकार को इसकी व्यवस्था करनी होगी कि कैसे इसे जरूरतमंदों तक पहुँचाया जा सके.

वित्त मंत्री ने लॉकडाउन में लोगों को राहत देने लिए जो पैकेज घोषित किया है, वह जरूरत के हिसाब से काफी कम है. इससे कहीं ज्यादा बड़े पैकेज के ऐलान की जरूरत है. इस वक्त कम से कम इस बात की बेहद जरूरत है कि सरकार के गोदामों में जो अतिरिक्त अनाज है, उसका एक बड़ा हिस्सा लोगों में बांटा जाए. पीडीएस को और मजबूत करना चाहिए. गरीब और आर्थिक-सामाजिक तौर पर कमजोर लोगों में तुरंत अनाज बांटना होगा, जिनके पास राशन कार्ड है, उन्हें भी और जिनके पास नहीं है, उन्हें भी.

24 मार्च को जैसे ही अचानक लॉकडाउन का ऐलान हुआ, उसके तुरंत बाद ही 'कॉमर्शियल मीडिया' के एक बड़े हिस्से ने प्रवासी मजदूरों का पलायन दिखाना शुरू किया. इस मीडिया के मुताबिक देश भर में 5 से 6 लाख प्रवासी मजदूर अपना सबकुछ अपनी पीठ पर लादकर पैदल ही हजारों किलोमीटर दूर अपने घरों को चल पड़े थे. साफ दिख रहा था कि लोगों को सरकार पर भरोसा नहीं रह गया है। रास्ते में कुछ मौतें भी हुई हैं. लेकिन ऐसे हालात और भारी मुसीबत झेलने के बावजूद इस वर्ग के क्षोभ की कोई आक्रामक अभिव्यक्ति नहीं दिखी है. ऐसा क्यों हुआ? क्या यह राजनीति का संकट है या सामाजिक आंदोलन का संकट है? ऐसे में तो दिक्कत झेल रही इतनी बड़ी आबादी को खुल कर सामने आना चाहिए था?

देखिये, भारत में प्रवासी मजदूर शहरी आबादी का एक बड़ा, कमजोर और अदृश्य वर्ग है. न सिर्फ प्रवासी मजदूर बल्कि बुजुर्ग और दूसरे कमजोर वर्ग के लोग, मसलन विधवाएं भी इसका हिस्सा हैं. ये लोग काम करने में सक्षम नहीं हैं. हमें उनका भी ध्यान रखना होगा. दिहाड़ी मजदूर भी एक कमजोर वर्ग है, चाहे वे प्रवासी मजदूर हों या न हों.

अब आपके सवाल पर आते हैं, सामाजिक तौर पर प्रवासी मजदूरों का यह बेहद कमजोर वर्ग आपको दिखता नहीं है. ये मध्य वर्ग की तरह ट्रेन के रिजर्व डिब्बों में यात्रा नहीं करते. मीडिया इनकी स्टोरी नहीं छापता. ठेकेदार इनका काफी शोषण करते हैं. जिन हालात में वे रहते हैं, उनके बारे में कोई भी ज्यादा नहीं सोचता.

पिछले कुछ दिनों में उनकी ओर मीडिया का खासा ध्यान गया है. इसके बावजूद यहां-

वहां बेहद बुरे हालात में फंसे प्रवासी मजदूरों को वापस घर भेजने की कोशिश लगभग न के बराबर हो रही है. हालांकि यह बहुत आसान नहीं है, लेकिन मेरा मानना है कि ऐसे हालात बनाए जाने चाहिए थे, जिनसे धीरे-धीरे, व्यवस्थित तरीके से ये मजदूर अपने घर पहुंच सकें. लॉकडाउन खोल कर एक ही झटके में उन्हें घर जाने की इजाजत देना भी ठीक नहीं होगा. आपको पता है कि अभी हाल में कोटा से कुछ स्टूडेंट्स को यूपी लाया गया. जब स्टूडेंट्स को स्पेशल बसों से वहां से लाया जा सकता है, तो प्रवासी मजदूरों को घर भेजने की व्यवस्था क्यों नहीं की जा सकती? आखिर प्रवासी मजदूर घर क्यों नहीं पहुंच पा रहे हैं? मुझे तो शक है कि मजदूरों को नौकरी देने वाले प्रभावशाली उद्योगपति और कारोबारी नहीं चाहते कि मजदूर घर जाएं, क्योंकि उनके लिए यह सस्ता श्रम बल है. उन्हें डर है कि अगर एक बार ये चले गए तो वापस आने में डरेंगे. और जाहिर है कि ऐसे में उन्हें सस्ता मजदूर कहां मिलेगा. महाराष्ट्र, तमिलनाडु और कुछ दूसरे राज्यों में ऐसी स्थिति आ सकती है. यही वजह है कि मजदूरों को वापस भेजने में हिचकिचाहट दिखाई जा रही है.

आखिर इस लॉकडाउन का बोझ किसे उठाना चाहिए? क्योंकि आपको पता है कि भारतीय समाज बंटा हुआ समाज है? सामाजिक और आर्थिक तौर पर काफी असमानता है।

पहली बात तो यह है कि सामाजिक और आर्थिक तौर पर कमजोर लोगों को ज्यादा मदद दी जाए. उनके लिए पीडीएस सिस्टम का दायरा बढ़ाया जाए, ताकि उन्हें अनाज मिल सके. फंड ट्रांसफर योजना को और विस्तृत किया जाए. प्रवासी मजदूरों के लिए शेल्टर की व्यवस्था हो. कम्यूनिटी किचन बड़े पैमाने पर शुरू किए जाएं. यह तो राहत पहुंचाने या बोझ उठाने का एक हिस्सा है.

दूसरा हिस्सा है, अमीरों, यानी रिच और सुपर रिच की भागीदारी का, यानी वे लोग, जो अच्छी स्थिति में हैं, और इस वैश्विक महामारी के असर से दूर हैं. दरअसल इस देश में 1000 अमीर परिवारों की कुल आय 50 लाख करोड़ रुपये के बराबर है. अगर आप इस पर 2 से 4 फीसदी टैक्स भी लगा दें, तो इससे देश की जीडीपी के 1 फीसदी से भी ज्यादा रकम इकट्ठा हो जाएगी. यह रकम हाल में दिए गए राहत पैकेज से भी ज्यादा होगी. आप रिच और सुपर रिच पर टैक्स लगाकर संसाधन जुटा सकते हैं. लेकिन यह आसान नहीं होगा. अमीर इसका पुरजोर विरोध करेंगे.

2001 में पीयूसीएल की एक याचिका से देश में फूड सिक्योरिटी एक्ट लागू करने का रास्ता साफ हुआ. सुप्रीम कोर्ट ने इस पर अहम फैसला दिया था. लेकिन मौजूदा दौर में भारतीय लोकतंत्र के दो अहम अंग, पार्लियामेंट और ज्यूडीशियरी अपना कर्तव्य निभाने में नाकाम नजर आ रहे हैं. क्या पार्लियामेंट को इमरेंसी बैठक कर हालात पर विचार नहीं करना चाहिए था और कोर्ट ने तो लगता है कि सरकार के आगे समर्पण कर दिया है, जबकि उसे सरकार से लोगों के लिए अपनाई जा रही नीतियों पर सवाल करना चाहिए था।

आपने बहुत बढ़िया सवाल किया है. उस दौर में सुप्रीम कोर्ट के रवैये की वजह से फूड सिक्योरिटी एक्ट का रास्ता साफ हुआ था. लेकिन आज स्थिति दूसरी है, देश में अनाज का स्टॉक ज्यादा होने के बावजूद आज खाद्य

लोकसेवकों के नाम अध्यक्ष का पत्र

आदरणीय बहन/भाई, जयजगत!

कोरोना ने भारत सहित पूरी दुनिया को अपने शिकंजे में ले लिया है। तालाबन्दी के बावजूद यह अपने पैर पसारता जा रहा है। डॉक्टर से लेकर सुरक्षाकर्मी तक इसकी जद में आ गए हैं। इन पंक्तियों के लिखने तक भारत में कोरोना से संक्रमितों की संख्या 35043 तथा मरने वालों की संख्या 1143 हो चुकी है। पता नहीं, यह कहां जाकर रुकेगा। इसका मतलब है तालाबंदी कोरोना का इलाज नहीं है।

हां, इस वैश्विक संकट में भी कई देशों ने अपने को बचाकर रखा है। संकट की इस घड़ी में भी जगह-जगह से पुलिस अत्याचार की शिकायतें आ रही हैं। मध्य प्रदेश के भिण्ड में अपने खाते में पैसा निकालने के लिए लाइन में खड़ी 30 महिलाओं को गिरफ्तार करके सीधे जेल भेज दिया गया है। अगर कोई अपराध साबित होता है, तो सजा देने का काम न्यायालय का है, पर पुलिस ने यह अधिकार भी न्यायालय से छीन लिया लगता है। सत्ता का चरित्र वैसे तो हमेशा ही हिंसा का रहा है लेकिन अफसोस की बात है कि लोकतंत्र में भी सत्ता का वही चरित्र प्रकट हो रहा है। अमीरों और प्रभावशाली लोगों के लिए सरकार की अलग नीतियां हैं और गरीबों के लिए अलग।

आरंभ में ऐसा लगा था कि शहरों से वापस अपने घरों को पैदल लौट रहे लोग अपनी-अपनी जगहों पर पहुंच गये हैं, लेकिन ऐसा नहीं है। अभी भी लाखों की संख्या में लोग जहां-तहां फंसे हुए हैं एवं भीषण परेशानियों का सामना कर रहे हैं। उनका भविष्य भी अंधकारमय दिखायी दे रहा है। सरकार की सहायता न मिल पाने के कारण प्रवासी मजदूर बहुत ही दयनीय स्थिति में हैं। सर्वोदय कार्यकर्ता जगह-जगह पर पीड़ितों की सेवा में लगे हुए हैं। हमें देश के विभिन्न स्थानों से समाचार मिले हैं कि हमारे जिला सर्वोदय मंडल एवं कार्यकर्ता जरूरतमंदों की हरसंभव मदद कर रहे हैं, वह भी बिना किसी सरकारी सहायता के। मैं उन सभी कार्यकर्ताओं को साधुवाद देता हूं।

इन परिस्थितियों में निराश नहीं होना है और हर हाल में हौसला बनाये रखने की जरूरत है। वंचितों और पीड़ितों के प्रति हमारी जिम्मेदारी बड़ी है। गांधीजी ने हमें समाज के अंतिम व्यक्ति के लिए काम करते रहने की प्रेरणा दी है।

अभी उत्तर प्रदेश में 30 जून तक सामाजिक और धार्मिक आयोजनों पर प्रतिबंध लगा दिया गया है। पंजाब में तालाबंदी का समय 15 दिन और बढ़ा दिया गया है। कई और राज्यों ने भी लॉकडाउन बढ़ाने की मांग की है। हम सब प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जल्द-से-जल्द यह तालाबंदी खत्म हो और लोग सामान्य जीवन व्यतीत कर सकें। हम आशा करते हैं कि 3 मई के बाद, उन क्षेत्रों को छोड़कर जहां की स्थिति अत्यंत नाजुक है, लोगों की आवाजाही से प्रतिबंध हटा लिए जाएंगे और सामान्य स्थिति बहाल हो सकेगी।

सर्वोदय के अनेक कार्यकर्ता ईमेल, व्हाट्सएप आदि का उपयोग नहीं करते हैं और वे सिर्फ पत्र द्वारा ही संपर्क में रहते हैं। आशा है, वे सभी स्वस्थ होंगे और अपने-अपने क्षेत्रों में सक्रिय होंगे। हमें दूर जाना है और लक्ष्य की प्राप्ति की दिशा में लगातार कदम बढ़ाते रहना है। **–महादेव विद्रोही**

अध्यक्ष, सर्व सेवा संघ

असुरक्षा ज्यादा है. उस समय सुप्रीम कोर्ट की पहल की वजह से 12 करोड़ बच्चों के लिए मिड डे मील का रास्ता साफ हुआ था. यह सिर्फ एक्टिविज्म से संभव नहीं हुआ. सुप्रीम कोर्ट की भी इसमें भूमिका रही है. लेकिन सरकार ने आज खाद्य सुरक्षा जैसे मुद्दों पर उदासीनता अपना ली है और कोर्ट ने इस तरह के मुद्दों को छोड़ कर आर्टिकल 370, राम जन्मभूमि, एनपीआर और एनआरसी जैसे मुद्दों को तवज्जो देना जरूरी समझा. तो कहने का मतलब यह है कि सुप्रीम कोर्ट ने पहले जैसा कमजोर आबादी को समर्थन देने वाला कदम नहीं उठाया. आज जरूरत है कि लोग ऐसे मुद्दों के समर्थन में खड़े हों. अदालतों को सरकार से उनकी नीतियों पर सवाल करने होंगे.

आपने हाल में रिवर्स माइग्रेशन से पैदा होने वाले हालात पर चिंता व्यक्त की थी. क्या राज्य सरकारें इसके लिए तैयार हैं? लौटने वालों पर कई जगह हमले भी हो रहे हैं, उनका सामाजिक बहिष्कार हो रहा है, क्या इसके बड़े सामाजिक और आर्थिक असर होंगे? क्या सरकारें इसके लिए तैयार हैं? हम तैयार हैं?

ये बेहद चिंता की बात है, आज नहीं तो कल यह होना ही है. वे लौटेंगे ही. इससे झारखंड, बिहार, ओडिशा छत्तीसगढ़ और पश्चिम बंगाल जैसे गरीब राज्यों में सस्ते श्रमिकों की बाढ़ आ जाएगी. यहां पहले से ही लोगों के पास पर्याप्त रोजगार नहीं है. बड़ी आबादी के पास बाहर जाकर काम करना ही एकमात्र रास्ता है. जब ये आबादी लौटेगी तो जल्दी वापस जाना नहीं चाहेगी. उन्हें फिर इस तरह के हालात पैदा होने का डर होगा. इन राज्यों में रोजगार के साधनों की पहले से ही कमी है. इससे संसाधनों पर और बोझ बढ़ेगा. जो आबादी वहां पहुंचेगी, वह थोड़ा-बहुत रोजगार जुटा सकती है, लेकिन साफ है कि इतनी बड़ी आबादी के लिए वहां समुचित रोजगार नहीं होगा. यह बड़ी गंभीर स्थिति होगी. खास कर बिहार जैसे राज्यों में, जहां के श्रम बल का बहुत बड़ा हिस्सा बाहर जाकर काम करता है. इसलिए आने वाले दिनों में वे सरकार की ओर से चलाई जाने वाली कल्याणकारी और सामाजिक सुरक्षा योजनाओं पर निर्भर होंगे. यही वजह है कि केंद्र और राज्य सरकारों को अब ज्यादा संसाधन झोंकने होंगे.

फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के गोदामों में अनाज भरा हुआ है और सरकार ने कैश ट्रांसफर जैसा कदम उठाया है। इस पर क्या कहेंगे?

दरअसल, सरकार के लोगों से यह पूछा जाना चाहिए कि आपके गोदाम भरे हुए हैं, आप स्टॉक रखने पर खासा पैसा भी खर्च कर रहे हैं, बारिश का मौसम आ रहा है. आखिर आप अनाज सड़ाने पर पैसा क्यों खर्च करना चाहते हैं? दरअसल मामला अनाज रिलीज करने का है. केंद्र सरकार इस पर राज्य सरकारों से पैसा मांगती है. जबकि इसकी कोई लागत नही आती. दरअसल इस मामले में केंद्र और राज्य सरकारें 'चिकन गेम इकनॉमिक्स' में फंसी हुई हैं, जहां दोनों अपनी-अपनी शर्तों की वजह से सौदा नहीं कर पा रही हैं. फिर भी मेरा यह कहना है कि केंद्र सरकार की इसमें गलती है. केंद्र को अनाज निःशुल्क रिलीज करना चाहिए। उसे पहले से कैश की कमी से जूझ रही राज्य सरकारों से इसके लिए कोई कीमत नहीं वसूलनी चाहिए. साफ है कि केंद्र सरकार फ्री में अनाज रिलीज नहीं करना चाहती. दूसरी बात ये है कि सरकार 2011 की आबादी के हिसाब से पीडीएस कवरेज चाहती है, जबकि 2020 में हालात बदल चुके है. साफ है कि सरकार अतार्किक ढंग से अनाज रिलीज रोकना चाहती है. वह नहीं चाहती कि पीडीएस कवरेज बढ़े.

2011 और 2020 के बीच हालात कैसे बदले हैं? इसका फूड सिक्योरिटी पर क्या प्रभाव पड़ेगा?

दअरसल नेशनल फूड सिक्योरिटी एक्ट के तहत पीडीएस में दो तिहाई आबादी कवर होती है. केंद्र सरकार 2011 की जनगणना के आधार पर इसकी गणना करती है. उस दौरान 120 करोड़ की आबादी के हिसाब से 80 करोड़ की आबादी इसके तहत कवर होती थी. लेकिन बेस आबादी के हिसाब से दस करोड़ लोग छूट जाते हैं. इस आबादी के पास कोई राशन कार्ड नहीं है. इसलिए इन्हें अनाज नहीं मिलता. आने वाले कुछ सप्ताह में इसी आबादी के सामने भुखमरी की स्थिति पैदा होगी. इसलिए हमारा कहना है कि राशन कार्ड न होने पर भी अनाज दिया जाए. पीडीएस का यूनिवर्सलाइजेशन होना चाहिए. यानी गरीबी में रह रहे हर शख्स को पीडीएस के तहत कवर किया जाए. उसके पास राशन कार्ड हो या न हो, उसे राशन मिले.

एफसीआई में अनाज स्टॉक की क्या स्थिति है?

इस वक्त एफसीआई (फूड कॉरपोरेशन ऑफ इंडिया के गोदामों में 7 करोड़ टन अनाज का भंडार है, और रबी की फसल आने के साथ ही यह बढ़ कर 8 से 9 करोड़ टन तक पहुंच जाएगा. ऐसा पहले कभी नहीं हुआ. इतनी ज्यादा मात्रा में अनाज का भंडार हमारे यहां जमा नहीं हुआ था. जबकि हकीकत यह है कि हमारे पास स्टोरेज की क्षमता नहीं है. इसलिए सरकार को चाहिए कि इस अनाज को सड़ाने के बजाय इसे बांटे.

कैश ट्रांसफर पर आपकी क्या राय है?

देखिये, कैश ट्रांसफर महत्वपूर्ण है. लेकिन फर्स्ट लाइन ऑफ डिफेंस के तौर पर खाद्यान्न बांटना जरूरी है. हां, कैश ट्रांसफर जरूरी है, खास कर दवा आदि खरीदने में इस्तेमाल होने के लिए. सरकार ने महिलाओं के जन-धन खाते के जरिये 500 रुपये बांटने का ऐलान किया और बांट भी रही है. लेकिन 500 रुपये की राशि बहुत कम है. दूसरे, सभी महिलाओं के पास जनधन खाता नहीं है, गरीब महिलाओं की आधी आबादी इससे महरूम है. अब जब ये महिलाएं बैंकों में 500 रुपये के लिए कतार लगाएंगी तो बैंकिंग ऑपरेशन चरमरा जाएगा. इसके अलावा दूर-दराज के गांवों में बैंक की शाखाएं दूर-दूर हैं. हर जगह बैंकों की पहुंच नहीं है. ऐसे में यहां बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट (बैंक विहीन इलाकों में बैंकिंग प्रतिनिधि के तौर पर काम करने वाले) के जरिये पैसा पहुंचाया जाना चाहिए. लेकिन यहां भी समस्या है. ये लोग बायोमैट्रिक का इस्तेमाल करते हैं. जबकि 6 मार्च को सरकार ने अपने दफ्तरों में बायोमैट्रिक का इस्तेमाल बंद कर दिया था. जब सरकार संक्रमण फैलने के डर से बायोमैट्रिक का इस्तेमाल बंद कर सकती है, तो बिजनेस कॉरेस्पोंडेंट को इसका इस्तेमाल कैसे करने दे सकती है.

ध्यान रहे कि आधे से ज्यादा लोगों को यह नहीं मालूम है कि उनका बैंक खाता जन धन योजना के अंतर्गत आता भी है कि नहीं। यानि उनमें से सैंकड़ो लोग घंटो तक कतार में खड़े रहेंगे सिर्फ यह जानने के लिए कि उनको ये राशि मिलेगी या नहीं। और कई लोगों को इन्हीं तकनीकी कारणों से यह राशि नहीं मिलेगी। तो ऐसी चीज़ों का भी ध्यान रखना चाहिए। ❑

ये कोरे किस्से नहीं, इंसानियत की सच्ची कहानियां हैं!

❑ श्रवण गर्ग

ये कुछ ऐसी कहानियां हैं, जिनका रेकार्ड और **याददाश्त** दोनों ही में बने रहना ज़रूरी है। कोरोना को एक-न-एक दिन ख़त्म होना ही है, जिंदा तो अंततः इसी तरह की लाखों-करोड़ों कहानियां ही रहने वाली हैं। ये तो केवल वे कहानियाँ हैं, जो नज़रों में पड़ गईं, वे कहानियां अभी उजागर होनी बाक़ी हैं, जो महामारी की समाप्ति के बाद आंसुओं से लिखी जाएँगी। एक-एक शख़्स के पास कहने को ऐसी कई कहानियाँ होंगी। ये कहानियाँ न सिर्फ सच्ची हैं, बल्कि देश के प्रतिष्ठित अख़बारों में प्रकाशित भी हो चुकी हैं। हम चाहें तो इन्हें और इन जैसी दूसरी कहानियों को आगे कभी आ सकने वाले ऐसे ही तकलीफ़ भरे दिनों में एक-दूसरे से बाँटने के लिए अपनी स्मृतियों में संजो कर रख सकते हैं।

पहली कहानी कोलकाता की है, स्नेहल सेनगुप्ता ने 'द टेलीग्राफ़' अख़बार के लिए लिखी है। लॉकडाउन के दौरान एक पुलिस पार्टी दमदम हवाई अड्डे के पीछे की तरफ़ बने मकानों के पास से गुज़र रही थी, तभी एक बयासी साल के बुजुर्ग ने उसकी ओर हाथ हिलाया। पुलिस पार्टी को लगा कि बुजुर्ग को शायद किसी मदद की ज़रूरत है। पुलिस पार्टी को बुजुर्ग ने अपना परिचय दीनबंधु महाविद्यालय से सेवानिवृत अध्यापक सुभाष चंद्र बनर्जी के रूप में दिया और बताया कि वे अकेले हैं और पेन्शन के सहारे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। उन्होंने यह भी स्पष्ट किया कि उन्हें पुलिस से किसी भी मदद की ज़रूरत नहीं है। वे तो कोरोना के खिलाफ़ लड़ाई में अपना योगदान देना चाहते हैं। उन्हें समझ में नहीं आ रहा है कि वे यह काम कैसे कर सकते हैं। पुलिस पार्टी दिखी तो लगा कि मदद करने का रास्ता मिल गया। उन्होंने दस हजार रुपये का चेक मुख्यमंत्री राहत कोष के लिए पुलिस पार्टी को सौंप दिया। उन्होंने यह भी कहा कि वे मदद तो ज्यादा की करना चाहते थे, पर पेन्शन की रक़म का काफ़ी हिस्सा दवाएँ आदि ख़रीदने में ही खर्च हो जाता है।

दूसरी कहानी पूर्वी दिल्ली के मंडावली इलाक़े में किराये के छोटे से मकान में आठ लोगों के परिवार की जिम्मेदारी निभाने वाले ऑटोरिक्शा चालक एम एस अंसारी की है, जिसे इंडियन एक्सप्रेस के लिए सौम्या लखानी ने प्रस्तुत किया है। 17 अप्रैल को अंसारी को अचानक लगा कि उसके पास तो अब एक ब्रेड ख़रीदने के पैसे भी नहीं बचे हैं। परिवार का क्या होगा? अगले दिन समाचार एजेन्सी ए एन आई द्वारा एक चित्र जारी हो गया, जिसमें अंसारी का मास्क लगा चेहरा आंसुओं से भीगा हुआ दिखाया गया था। बस क्या था! साठ हज़ार रुपये की राशि और बारह दिन का राशन अंसारी के घर तुरंत ही लोगों ने पहुँचा दिया। लॉकडाउन के पहले अंसारी 17-18 हज़ार रुपये महीने का कमा लेते थे। उसी से परिवार चलता था, रिक्शे की किश्त और मकान भाड़ा भी दिया जाता था। आज अंसारी के पास शब्द नहीं हैं कि इतनी मदद के लिए मदद करने वालों का कैसे आभार व्यक्त करें!

तीसरी कथा बिहार में नालंदा जिले की एक अदालत की है, जिसमें मुख्यमंत्री नीतीश कुमार के गृह जिले के ही एक गाँव का सोलह वर्षीय किशोर 17 अप्रैल को न्यायिक दंडाधिकारी मानवेन्द्र मिश्रा को बता रहा था कि उसे बटुए की चोरी किस मजबूरी के चलते करना पड़ी थी। किशोर ने बताया कि वह अपनी माँ और छोटे भाई को भूख से मरते हुए देख नहीं पा रहा था। अदालत में उपस्थित लोग जब समझ ही नहीं पा रहे थे कि आगे क्या होने वाला है, तभी दंडाधिकारी ने फ़ैसला सुनाया कि किशोर अपने घर जाने के लिए स्वतंत्र है। उन्होंने यह भी कहा कि उनके अपने पैसों से किशोर के लिए अनाज, सब्ज़ी और कपड़ों की व्यवस्था की जाए। 'द टेलीग्राफ़' अख़बार के देवराज की कहानी का अंत यह है कि अदालत में उपस्थित लोगों की आँखें नम थीं और जो पुलिस किशोर को पकड़कर अदालत लाई थी, वही पुलिस उसे उसके गांव छोड़ने जा रही थी।

और यह कहानी डॉक्टर उमा मधुसूदन को लेकर है। उमा ने अपनी मेडिकल की पढ़ाई मैसूर (कर्नाटक) के एक मेडिकल कॉलेज से पूरी की थी। वे इस समय अमेरिका के साउथ विंडसर हॉस्पिटल (कनेक्टिकट स्टेट) में कार्य करते हुए कोरोना के मरीज़ों के इलाज में जी-जान से लगी हुई हैं। उमा ने अपने मरीजों के इलाज अपने आप को इस कदर झोंक दिया है कि लोग उनकी सेवा से भाव-विह्वल हैं। सोशल मीडिया पर वायरल हो रहे एक वीडियो में उमा अपने घर के बाहर खड़ी हुई हैं और कतारबद्ध सैंकड़ों कारें उनके सामने रुकती हुई गुज़र रही हैं। उमा, कारों में बैठे लोगों का अत्यंत विनम्रतापूर्वक अभिवादन स्वीकार कर रही हैं। क्या हम भी अपने यहाँ लॉकडाउन के ख़त्म होने की प्रतीक्षा नहीं कर रहे हैं, जिससे कि अपने चिकित्सकों और स्वास्थ्यकर्मियों के प्रति इसी तरह से आभार व्यक्त कर सकें? या उन्हें संकट ख़त्म होने के साथ ही हम भूल जाने वाले हैं? ❑

गरीब भूख से मर रहे और चावल से सैनिटाइजर बनाकर अमीरों की मदद हो रही : राहुल गांधी

कांग्रेस के पूर्व अध्यक्ष राहुल गांधी ने एक मीडिया रिपोर्ट का हवाला देते हुए आरोप लगाया है कि देश में गरीब भूख से मर रहे हैं और उनके हिस्से के चावल से सैनिटाइजर बनाकर अमीरों की मदद की जा रही है। उन्होंने यह सवाल भी किया कि आखिर देश का गरीब कब जागेगा?

उन्होंने एक खबर शेयर करते हुए ट्वीट किया कि ''आखिर हिंदुस्तान का ग़रीब कब जागेगा? आप भूख से मर रहे हैं और वे आपके हिस्से के चावल से सैनिटाइजर बनाकर अमीरों के हाथ की सफ़ाई में लगे हैं।''

उन्होंने जो खबर शेयर की, उसके मुताबिक, देश में जारी कोरोना वायरस संकट के बीच सरकार ने गोदामों में मौजूद अतिरिक्त चावल का उपयोग हैंड सैनिटाइजर की आपूर्ति के वास्ते जरूरी एथेनॉल बनाने के लिए करने का फैसला किया है। **–क्विंट हिन्दी**

सोशल डिस्टेंसिंग शब्द का प्रयोग मत कीजिए, इसका इतिहास डरावना है
गणेश देवी और कपिल पाटिल का प्रधानमंत्री को खत

समस्त विश्व इस समय कोरोना महामारी से बचने के लिए एक लड़ाई लड़ रहा है। प्रधानमंत्री महोदय, आपकी अपील के बाद यह देश भी इस लड़ाई में किसी भी मायने में पीछे नहीं है। इस पत्र के माध्यम से आपके विचारार्थ यह निवेदन करना चाहते हैं कि—

1. इस वैश्विक महामारी से लड़ने के लिए प्रधानमंत्री के रूप में आपने देश को दो बार संबोधित किया है। अपने संबोधन में आपने सोशल डिस्टेंसिंग बनाए रखने की बार-बार अपील की। कोरोना महामारी के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिए लॉकडाउन के साथ लोगों को एक दूसरे के संपर्क में कम से कम आने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। लोगों को एक दूसरे से तय भौतिक दूरी बनाए रखने की ज़रूरत है, ताकि कोरोना वायरस का साइकल टूटे और वह अधिक न फैलने पाए। इस अपील को सभी लोगों ने स्वीकार भी किया है।

हालांकि, सोशल डिस्टेंसिंग यानी सामाजिक दूरी जैसा शब्द दुनिया के लिए भले नया हो, लेकिन भारत में यह शब्द दो हज़ार साल से अधिक अवधि से अस्तित्व में है। जातिप्रथा के नाम पर अस्पृश्यता यानी छूआछूत का अर्थ किसी विशेष समाज से सामाजिक दूरी बनाए रखना ही रहा है। देश और मानवता को शर्मसार करने वाले इस शब्द का दो हजार साल का शर्मनाक इतिहास रहा है। इस अस्पृश्यता के खिलाफ, राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने एक महान लड़ाई लड़ी। उन्होंने छूआछूत के उन्मूलन को स्वतंत्रता संग्राम का एक महत्त्वपूर्ण हिस्सा बनाया। भारतीय संविधान के शिल्पी भारतरत्न डॉ. भीमराव अंबेडकर ने जातिप्रथा के तीव्र विरोध की शुरुआत की। संविधान ने अस्पृश्यता को समाप्त कर दिया और समाज में रहने के लिए सोशल डिस्टेंसिंग जैसी कुप्रथा के दुख को स्थाई रूप से खत्म करने अनुमति दे दी। लिहाज़ा, कम से कम आज इस शब्द के प्रयोग को खारिज करने की आवश्यकता थी।

ऐसे समय, जब लॉकडाउन में लंबी अवधि से लोग अपने घरों में क़ैद हैं, तब सोशल डिस्टेंसिंग की नहीं, बल्कि इसके विपरीत सोशल कनेक्शन की सबसे अधिक आवश्यकता है। बेशक इसके लिए फिजिकल डिस्टेंसिंग सबसे अधिक उपयुक्त शब्द होताा। दुनिया भर के कई प्रमुख समाजशास्त्रियों के इस शब्द पर *गहरी आपत्ति जताने के बाद विश्व स्वास्थ्य संगठन (WHO) ने 20 मार्च को सोशल डिस्टेंसिंग शब्द के इस्तेमाल को बंद कर दिया। इसके बाद WHO ने भौतिक दूरी के साथ सामाजिक जुड़ाव (Social connection with physical distance) नामक एक नया शब्द प्रयोग शुरू किया है।*

लेकिन 24 मार्च को जब आपने भारत में लॉकडाउन की घोषणा की, तब भी आपने इस शब्द का प्रयोग किया, जिस शब्द को डॉ. अंबेडकर ने सिरे से ख़ारिज किया था। उसी शब्द का दोबारा प्रयोग आपने उसी महापुरुष की जयंती 14 अप्रैल को उन्हें श्रद्धांजलि देने के लिए देश को संबोधित करते हुए भी किया।

फिलहाल सरकारी प्रचार के विज्ञापनों, सोशल मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक/प्रिंट मीडिया के समाचारों में सोशल डिस्टेंसिंग का प्रयोग धड़ल्ले से किया जा रहा है। इस शब्द के प्रयोग को तत्काल रोकने की ज़रूरत है। हमारा निवेदन है कि इस शब्द के प्रयोग को टाला जाना चाहिए और देश के प्रमुख होने के नाते आपको ही इसकी पहल करनी चाहिए।

फिजिकल डिस्टेंसिंग का अर्थ है कि किसी संदिग्ध मरीज से दूसरे को न संक्रमण हो, इसलिए मरीज़ या संदिग्ध और अन्य लोगों के बीच न्यूनतम दूरी होनी चाहिए। बल्कि *इसके लिए कोरोना डिस्टेंसिंग यानी कोरोना दूरी जैसे सीधे शब्द का प्रयोग करना अधिक उचित होगा। जातिप्रथा की व्यवस्था के कारण ही सोशल डिस्टेंसिंग जैसी भेदभाव वाली कुप्रथा का प्रादुर्भाव हुआ था। इसलिए, हम अपील कर रहे हैं कि मीडिया में इस शब्द का इस्तेमाल तत्काल बंद होना चाहिए।*

2. कोरोना संक्रमण के बीच सोशल कनेक्शन की ज़रूरत है। दिल्ली में तबलीग़ी समाज की एक घटना के बाद कोरोना को एक धर्म विशेष से जोड़कर देखने का एक अमानवीय प्रयास किया गया, जो वेदनापूर्ण और दर्दनाक है। कोरोना का प्रसार किसी भी जाति, धर्म, क्षेत्र, भाषा या देश तक सीमित नहीं है। आज सभी सीमाओं को लांघकर कोरोना ने पूरी दुनिया को अपनी गिरफ्त में ले लिया है। इसलिए, उसे किसी धर्म विशेष से जोड़ना विशुद्ध रूप से अवैज्ञानिक है। यह मुद्दा फिलहाल अपने चरम पर है। क्या इसके पीछे कोई एजेंडा है? जो लोग इस देश और देशवासियों से प्यार करते हैं, वे इस तरह की प्रवृत्ति से डर रहे हैं। जिस तरह से यह समाचार प्रसारित किया गया और बाद में विभिन्न मीडिया चैनलों के जरिए फैलाया गया, उसे आपको इस देश का संवैधानिक प्रमुख होने के नाते रोकने की पहल करने की ज़रूरत है।

दिल्ली में एक मणिपुरी लड़की को चीनी समझकर उस पर एक व्यक्ति ने थूक दिया। इस तरह की हरकत घातक और नफरत फैलाने वाली है। थूकने वाला किसी मरकज़ का सदस्य नहीं था। लेकिन जिस तरह से पूर्वोत्तर के लोगों को परेशान किया जा रहा है, वह बहुत ही पीड़ादायक है। भविष्य की यह तस्वीर और भयावह होने वाली है। अस्पृश्यता के पूर्वाग्रह के चलते दलित समुदाय को दो हज़ार साल तक इस अपमान को सहना पड़ा और देश को इसकी बड़ी कीमत चुकानी पड़ी। यह छूआछूत अब मुस्लिम समुदाय और उत्तर पूर्व के लिए गंभीर ख़तरा है। देश की एकता और संविधान प्रदत्त अधिकारों का यह माखौल उड़ाता है।

अभी भी बहुत देरी नहीं हुई है। आपको पहल करनी चाहिए। हम आपसे अनुरोध करते हैं कि आप आगे आकर घृणा और उत्पीड़न का शिकार होने वाले नागरिकों को सुरक्षा का आश्वासन दें। ❑

प्रकृति स्वयं अपना उपचार कर रही है

❑ अभय मिश्रा

मध्य भारत में एक नदी बहती है. नाम है चंबल. यह वही चंबल है, जहां के बीहड़ों में डाकुओं की धमक सुनी जाती रही है. स्थानीय भाषा में इस इलाके को डांग कहा जाता है. आज जब चारों ओर से यह खबरें आ रही हैं कि नदियों का पानी साफ हो गया है तो चंबल की कहानी देश को बता सकती है कि वास्तव में ऐसा हुआ क्यों?

चंबल भारत की सबसे ज्यादा साफ-सुथरी नदी है. आज से नहीं, लॉकडाउन के पहले से या यूं कहिए हमेशा से. प्राचीन कहानियों में चंबल को शापित नदी माना गया है. यहां तक कि इसके किनारे चलते हुए एक बार तो श्रवण कुमार के मन में भी आया कि कंधे पर टंगे मां-बाप बोझ की तरह हैं. शापित होने के कारण चंबल को सामाजिक रूप से सम्मान नहीं मिला, यही कारण है कि डांग क्षेत्र में तकरीबन सवा चार सौ किलोमीटर के बहाव क्षेत्र में एक भी मंदिर नहीं है. सिवाय इसके अंतिम गंतव्य स्थल बरेह के, जहां यह यमुना में मिलती है.

सामाजिक रूप से सम्मान न मिलने के कारण नदी तट पर मेले, पर्व भी आकार नहीं ले पाए. लोग चंबल में जरूरत के लिए नहाते जरूर हैं, लेकिन आस्था की डुबकी नहीं लगाते और आस्था की डुबकी नहीं लगती इसलिए पूजा के फूल भी नदी को समर्पित नहीं किए जाते. वे डाकू, जिन्हें स्थानीय लोग बागी कहते हैं, उनकी वजह से चंबल के किनारे इंडस्ट्रीज भी डेवलप नहीं हो पायीं. और नदी औद्योगिक कचरे से साफ बच गई. इन डाकुओं के आतंक से क्षेत्र का विकास नहीं हो पाया और नदी विकास का शिकार नहीं हो पाई. प्रकृति यहां खूब फल फूल रही है, सिर्फ चंबल के डांग इलाके में ही इतने घड़ियाल पाए जाते हैं, जितने शायद देश की किसी भी बड़ी नदी में नहीं मिलते. कुल मिलाकर सदियों से शाप बना यह सामाजिक लॉकडाउन चंबल के लिए वरदान साबित हुआ.

इस पर्यावरणीय सकारात्मक बदलाव की एक छोटी झलक इन दिनों देश देख रहा है, जिसमें मरकरी, सीसा, क्रोमियम और निकल से लबालब नदियां एकाएक साफ होकर बहने लगी हैं. वैसे ही, जैसे वे चार–पांच दशक पहले तक बहती थीं. इस बदलाव ने सरकार को एक मौका उपलब्ध करवाया है कि वह औद्योगिक कचरे का नदी में वास्तविक हिस्सा जान सके.

अभी के हालात तो यह हैं कि गंगा में कितने नाले गिरते हैं, और उनसे कितना प्रदूषण होता है, इसी पर केंद्रीय प्रदूषण नियंत्रण बोर्ड, राष्ट्रीय स्वच्छ गंगा मिशन और राज्य सरकारें एकमत नहीं हैं. यानी जितनी एजेंसियां हैं, उनके उतने ही अलग आंकड़े हैं. लॉकडाउन के दौर में एजेंसियां इतना तो कर ही सकती हैं कि कम से कम आंकड़ों पर आम राय बना लें. जिन्हें आंकड़ों में रुचि नहीं है, वे जान लें कि जून 2014 में केंद्र सरकार ने नमामि गंगे परियोजना को शुरू किया था. तब से छह साल हो गए. पिछले एक महीने के लॉकडाउन में गंगा का पानी जितना साफ हुआ है, उसका बीस फीसद भी नमामि गंगे योजना छह साल में नहीं कर पायी. जबकि इस दौरान उसने तकरीबन साढ़े आठ हजार करोड़ की राशि खर्च कर दी.

इस लॉकडाउन से देश और दुनिया की अर्थव्यवस्था को कितना नुकसान पहुंचा, इसका आकलन लंबा चलने वाला दुरूह कार्य है लेकिन इस लॉकडाउन ने गंगा को कितना फायदा पहुंचाया, यह साफ नजर आ रहा है. नदियों का सीधा सा संदेश है कि उन्हें साफ करने की नहीं, गंदा न करने की जरूरत है.

नदियों के प्रदूषण में बड़ा हिस्सा तकरीबन 80 फीसद म्यूनिसिपल सीवेज का होता है, इसके बाद चमड़ा शोधन कारखाने और शुगर मिल इत्यादि का नंबर आता है. इसी म्यूनिसिपल सीवेज को उपचारित करने के लिए बड़ी संख्या में सीवेज ट्रीटमेंट प्लांट लगाने की कवायद चल रही है. गंगा-यमुना बेसिन के राज्यों में 152 एसटीपी बनाए जाने हैं, जिनमें से पिछले छह साल में मात्र 46 बन पाए हैं. जबकि सीवेज डिस्चार्ज बढ़ता ही जा रहा है.

नमामि गंगे परियोजना की पांच साल के लिए कुल स्वीकृत बजट राशि बीस हजार करोड़ रुपए हैं और गंगा सफाई के कार्य को इसी साल दिसंबर तक पूरा किया जाने का लक्ष्य है. समय सीमा खत्म होने को है और लक्ष्य अभी बहुत दूर है.

लॉकडाउन ने एनएमसीजी को यह कहने का मौका दे दिया कि गंगा साफ हो गई. लेकिन अपने गाल बजाने में व्यस्त अधिकारी यह भूल गए हैं कि एक दिन लॉकडाउन खत्म होगा और प्रदूषण चौगुनी रफ्तार से बढ़ेगा, तब इस स्थिति से कैसे निपटा जाएगा? एनएमसीजी सीधे तौर पर बांध कंपनियों के दबाव में काम करती है. अन्यथा क्या कारण है कि जब बिजली की मांग पच्चीस से तीस फीसद गिर गई है, तब भी मूल धारा में ज्यादा पानी नहीं छोड़ा जा रहा. यदि आईआईटी कंसोर्डियम की सलाह मानकर गंगा में पचास फीसद बहाव सुनिश्चित किया जाए तो वह स्व-उपचारित होने की स्थिति में आ जाएगी, जिसके सकारात्मक परिणाम मिल सकते हैं।

जमीनी कोशिशों के बजाय, एनएमसीजी नारों और दावों में ही रुचि लेता है. अब तक उसने 58 करोड़ रूपए विज्ञापन के तौर पर यह बताने में खर्च कर दिए हैं कि गंगा-सफाई की उसकी कोशिशें क्या हैं। इन विज्ञापनों के बदले में न्यूज चैनलों के कैमरों को गंगा अविरल और निर्मल नज़र आती रही है.

नदी की सफाई के लिए नमामि गंगे जैसी योजना नहीं, पर्यावरणीय लॉकडाउन योजना चाहिए. जिसके तहत महीने में कम से कम दो दिन नदियों को पूरी तरह स्वतंत्र छोड़ दिया जाय. बांध में पानी न रोका जाये, उपचारित या गैर उपचारित कोई भी सीवेज उसमें ना डाला जाये, गंगा पथ पर बनी औद्योगिक इकाइयों को पूरी तरह से बंद रखा जाय और नदियों से सामाजिक दूरी बनाकर रखी जाय. यदि महीने में दो दिन भी पर्यावरणीय लॉकडाउन को लागू किया जाता है, तो यह नदी और मानव जाति दोनों के हित में होगा. इसके लिए नमामि गंगे और उसके भारी भरकम बजट, दोनों की आवश्यकता नहीं होगी. यह नीति नियंताओं पर है कि वे इस लॉकडाउन से क्या सबक सीखते हैं. अन्यथा चंबल और लॉकडाउन की कहानी से यह भी शिक्षा मिलती है कि जब सारी सरकारी योजनाएं फेल हो जाती हैं, तो प्रकृति अपनी योजना लागू करती है. –द प्रिंट

... पृष्ठ 6 का शेष

भूख क्वारंटाइन नहीं होती दोस्त!

यह संदिग्ध है। अब या तो ये महीने दो महीने में अपने पहले के काम की आदत से और उससे मिलने वाले अपेक्षाकृत अधिक वेतन के हैंगओवर से उबर चुकेंगे और गांव कस्बों में थोड़ा कम में गुज़ारा करने की आदत डाल लेंगे या फिर वापस उन्हीं जगहों पर रोजगार पकड़ने शहर जाएंगे, जहां की माली हालत अब पहले सी नहीं रही और वे पहले वाली पगार देने से मुकर जाएंगे। फिर?

अगर ये मजदूर एकवट हुए कि अब शहर नहीं जाएंगे तो उद्योगों का क्या होगा? ऊपर से गल्फ देशों, सिंगापुर, मलेशिया आदि देशों में फंसे प्रवासी मजदूर जब वापस अपने देश लौटाए जाएंगे तब क्या होगा? मध्यवर्ग के वे बच्चे जो उच्च शिक्षा संस्थानों से पास आउट होकर दस लाख पंद्रह लाख के पैकेज का सपना देख रहे हैं, इस तालाबंदी के बाद उनके सपनों को चूर होना ही है। कम मौके होंगे तो कम पैकेज भी होंगे। सो मध्यवर्ग में स्वयं भी भयंकर बंटवारे और बिखराव की आशंका है। अब एक सूरत गांव में यह बन सकती है कि खेत तो वही रहेंगे, मगर खाने वालों की संख्या दुगनी हो जाएगी। फिर क्या होगा? आपसी कलह। जो सदस्य शहर में रहते हुए गांव की वित्तीय सहायता करते थे, वे यदि वापस शहर न जाने का निर्णय लेते हैं तो खेतों का आकार छोटा होता जाएगा। दो ही समाधान बचते हैं, या तो वे वापस शहर जाएं और कम पगार, कम सुविधाओं में काम करें या गांव कस्बे में ही कोई दस्तकारी या हुनरमंदी का धंधा करें।

कुल मिलाकर यह कि इस कोरोना-काल में जो संभावित संकट है, वह अर्थ से अधिक विश्वास का है। जनता की आस्था, धर्म, भगवान, सरकार और अंततः लोकतंत्र से विमुख होकर डिग भी सकती है। व्यक्तिगत और पारिवारिक सामाजिक रिश्तों का क्षरण अपनी जगह है। बची हुए दुनिया कितनी बचेगी और कैसी बचेगी, यह देखना महत्वपूर्ण होगा। उद्योग टेक्नोलॉजी और श्रम-सम्बंधों, उत्पादन वितरण और लाभ को लेकर कोई नई सैद्धांतिकी सामने आएगी या नहीं? पर्यावरण और प्राकृतिक संसाधनों के दोहन की कोई नई सोच पैदा होगी या नहीं? ये सारे मुद्दे भविष्य के गर्भ में हैं। फिलहाल सारी लड़ाई यह है कि हम कैसे बचें। जो बचेंगे, वे हल करेंगे। ❑

कोरोना से लड़ने के लिए सन्नद्ध

राजस्थान प्रदेश सर्वोदय मंडल तथा ग्राम भारती समिति के कार्यकर्ता कोरोना से लड़ने के लिए गत 24 मार्च से विभिन्न गतिविधियों में संलग्न हैं। प्रदेश सर्वोदय मंडल के मंत्री राजेन्द्र कुम्भज ने सांगानेर क्षेत्र के गांवों में अपनी पेंशन से खाना, राशन आदि बांटने का काम प्रारंभ किया, जो बाद में एक मुहिम बन गया और स्थानीय व्यवसायियों तथा अन्य समाजसेवियों के सहयोग से इसे व्यापक रूप दिया गया। आज वे लगभग 500 लोगों तक भोजन पहुंचाने का काम कर रहे हैं। ग्राम भारती समिति की सचिव व सर्वोदय मित्र कुसुमलता जैन तथा महिला समन्वयक सरिता योगी, आमेर की बस्तियों तथा जमवारामगढ़ के गांवों में 500 परिवारों को पिछले 24 मार्च से ही भोजन वितरण का काम कर रही हैं। ग्राम भारती समिति के कार्यकर्ता अंकित अपने युवा साथियों के सहयोग से जलमहल के पास की कच्ची बस्तियों में वितरित करने के लिए प्रतिदिन भोजन पका रहे हैं। इसी तरह कुसुमलता जैन धोये जा सकने वाले मास्क तैयार कर निःशुल्क वितरित कर रही हैं। **–भवानीशंकर कुसुम**

ओ मजूरों-किसानों!

ओ मजूरों-किसानों उठो!
क्यों तू खोया हुआ ख्वाब में,
तेरी दुनिया लुटी जा रही है,
ऊंघते हो तू किस ख्याल में।
ओ मजूरों-किसानों...

चिलचिलाती हुई धूप में,
एड़ी-चोटी पसीना बहा,
तूने फसलें उगाई,
सारी दुनिया खिलायी,
खुद ही भूखों मरे क्यों मगर।
ओ मजूरों-किसानों...

जब ठिठुरते हुए शीत में,
तेरा नंगा बदन कांपता,
ऊंचे कोठों पर तब,
फूलों की सेज पर,
नींद मीठी कोई ले रहा।
ओ मजूरों-किसानों...

धूल-धुएं में तू पल रहा,
हक तेरा पर कोई ले रहा,
तू बनाता महल,
वस्त्र, वस्तु सकल
खुद तू नंगा क्यों बेघर-बेदर।
ओ मजूरों-किसानों...

दो जला दाना हर एक यहीं,
जो तेरे काम का है नहीं,
क्यों तू घुट-घुट मरे,
कायरों से डरे,
फूंक दो ये जमीं आसमां।
ओ मजूरों-किसानों...

हेमप्रभा बाईदेव को नमन

असम की वरिष्ठ सर्वोदय कार्यकर्ता और वयोवृद्ध स्वतंत्रता सेनानी हेमप्रभा भराली का दिनांक 29 अप्रैल 2020 को गुवाहाटी में निधन हो गया। वे 101 वर्ष की थीं। अपने मित्रों और सहकर्मियों के बीच हेमप्रभा बाईदेव के नाम से विख्यात हेमलता भराली का जन्म 19 फरवरी 1919 को असम के नार्थ लखीमपुर जिले के ठकुआखाना में हुआ था। 1950 में असम में आये भूकम्प और 1962 में भारत चीन युद्ध के समय लखीमपुर और तेजपुर में उन्होंने अविस्मरणीय सेवाकार्य किया। भारत सरकार ने 2005 में उन्हें पद्मश्री से सम्मानित किया तथा 2006 में उन्हें राष्ट्रीय सद्भावना पुरस्कार से सम्मानित किया गया। वे केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड की राष्ट्रीय कार्यकारिणी की सदस्य थीं तथा विनोबा के साथ राष्ट्रव्यापी भूदान पदयात्रा में शामिल रहीं। हेमलता भराली के नेतृत्व में 25 अक्टूबर 1967 को कस्तूरबाग्राम इंदौर से महिलाओं की एक पदयात्रा निकली, जो कई वर्ष तक चली। वे असम सर्वोदय मंडल, सरणिया आश्रम तथा मैत्री आश्रम से भी आजीवन जुड़ी रहीं। 2015 में असम सर्वोदय मंडल ने उन्हें उनकी अतुल्य सेवाओं के लिए सम्मानित किया।

उनके निधन से सर्वोदय आंदोलन की अपूरणीय क्षति हुई है। सर्व सेवा संघ तथा असम सर्वोदय मंडल उनके निधन पर अपनी हार्दिक श्रद्धांजलि अर्पित करता है। उनका जीवन सर्वोदय कार्यकर्ताओं को प्रेरणा देता रहेगा। **–भीमकांत कोंवर,** *अध्यक्ष, असम सर्वोदय मंडल*

'Sarvodaya Jagat' Hindi Fortnightly
Registered under RNI No. 35495/78, Postal Registration No. VSI-(E) 04, Valid upto 31 December 2020
Issued by S.S.P.O. Varanasi (East Division)

कविताएं

प्रवासी श्रमिक

संतोष कुमार द्विवेदी की तीन कविताएं

एक

ऐसा लगता है कि मेरा गांव भी
मेरे साथ ही शहर आ गया है।
कमाने-खाने के लिए शहर आने की जिस
विवशता को मैंने
कछुए के खोल की तरह सख्त बना कर ओढ़
लिया है,
उसके भीतर दुबका बैठा
यह गांव
मौका देखकर मुंडी बाहर निकाल लेता है।
कभी मिट्टी की खुशबू बनकर,
कभी तारों भरा प्रच्छन्न आकाश,
कभी गांव की साफ-सुथरी गलियां,
नदिया के चौड़े-चौड़े पाट,
पक्षियों की चह-चह,
तालाबों के सुंदर-सुघड़ घाट,
खेतों की हरियाली,
खलिहान में रखी लांक,
हल जुते बैलों की घंटी,
तो कभी गइया-गोठान बनकर
खूब ललचाता है।
कभी आते-जाते की राम-राम,
कभी उत्सव और मेलों के ठाँव,
कभी भाई-भौजाई, काका-काकी, मामा-मामी,
फूफा-फूफी, दादा-दादी के प्रेम पगे
बोल बनकर,
कभी महतारी का उदास चेहरा,
कभी दादा के खांसी की ठों-ठों,
लाठी की ठक-ठक
से बहुत भरमाता है।
मैं तंग आ जाता हूँ,
खीझ मिटाने के लिए
कई बार भला-बुरा कहता हूं।
भाड़ में जाए गांव,
अपमान, गरीबी और जहालत के सिवा
आखिर उसने हमें दिया ही क्या है?
मेरे गुस्से को देख कर
वह फिर उसी खोल में सिमट जाता है।
लेकिन जैसा भी है,
इस गांव से मेरा गर्भनाल का नाता है।
सच कहूं तो मेरा गांव
मुझे बरबस बहुत याद आता है।

दो

गहरे पसोपेश में थे वे,
आज से अभी से 21 दिनों का 'लॉकडाउन'
एक-दूसरे का मुंह ताकते हुए
आपस में ही पूछ रहे थे—
भाई यह 'लॉकडाउन'
क्या बला है?
देशज अभिमान से सिक्त
सत्ता के पास उन्हें देने को
अपना-सा, दिल में उतर जाने
दिमाग को संशय मुक्त कर देने जैसा
अपनी भाषा का एक शब्द भी नहीं था।
ठेकेदार के आदमियों ने समझाया—
जानते नहीं!
कोविद-19 ने कहर बरपाया है,
बस-ट्रेन के पहिए थम चुके हैं,
कल - कारखाने,
निर्माण और सेवा के
सारे उपक्रम बंद हो चुके हैं।
यह दारुण कोरोना काल है,
सबको अपने-अपने घरों में रहना है,
तुम्हें भी अपने घर जाना है?
ये पकड़ो अपना हिसाब और निकलो लो!
दिल धक्क हो गया,
पर पुराने अनुभवों ने संभाल लिया।
मालूम था, उनसे खालिस काम का नाता है।
संवेदना और सहानुभूति की उम्मीद
गांव से निकलते ही छोड़ दी थी उन्होंने।
फिर भी मुंह से एक-ब-एक फूट पड़ा
पर जाएंगे कैसे?
उन्होंने वही सुना-सुनाया जुमला दोहराया,
अभी तो 'लॉक डाउन' है।
जबाब मिला मालूम नही,
यह तुम्हारी समस्या है!
यह परिसर अभी के अभी खाली करना है।
दो-दस, पचास-सौ को नहीं,
लाखों प्रवासी श्रमिकों को यही कहा गया।
एक घोषित फरमान,
एक अघोषित फरमान,
चक्की के दो पाट बन गए
और उसके बीच फंस गईं
प्रवासी श्रमिकों की जिंदगियां।
सड़क पर निकल पड़ने के अलावा
कोई विकल्प नहीं था उनके पास।
उन्होंने समेट ली आनन-फानन अपनी गृहस्थी,
जादू जानते होंगे शायद
अथवा किसी पीर फकीर या औलिया ने दी
होगी उन्हें
एक ऐसी जादुई पोटली,
जिसमें गृहस्थी का सारा सामान अट जाए,
सिर पर रखते ही भारहीन होकर सिमट जाए
और वे सचमुच सिर पर लादकर
अपना सारा संसार
पत्नी बच्चों समेत
पैदल ही निकल पड़े,
दो सौ, पांच सौ और हजार किलोमीटर
लंबे गन्तव्य के लिए।
किसी परिव्राजक की तरह बिना पीछे देखे,
एक अनिश्चित और अनंत की यात्रा पर
बगैर किसी शिकायत के।

तीन

पुरइन के पत्तों पर पड़ी
पानी की बूंदों की तरह है
श्रमिकों और शहरों का संबंध।
शहरों को बनाने, सजाने और चलाये रखने में
हर जगह मौजूद हैं वे,
घर के बाहर,
दफ्तर में और घर के भीतर।
पर इन सबसे अलिप्त
बिल्कुल पराए।
जैसे पुरइन के पत्तों पर पड़ी पानी की बूंदे
निःसङ्ग होती हैं,
चंचल और चलायमान होती हैं,
ग्रहण कर लेती हैं रोशनी के रंग,
लेकिन दरअसल वे वैसी होती नहीं हैं,
न उनकी अपनी जड़ें होती हैं,
न स्वतःस्फूर्त गति,
हवा के साथ साथ बनती बिगड़ती रहती हैं
बार बार।
कुछ-कुछ ऐसा ही है श्रमिकों का जीवन,
काम निकलते ही, पुरइन के पत्तों पर पड़ी
पानी की इन बूंदों की तरह
उन्हें भी झाड़ कर अलग कर दिया जाता है।
क्या आपको पता है
पुरइन के पत्तों पर इसके
कोई निशान नहीं होते? ❑

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए प्रकाशक अरविन्द अंजुम द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा महावीर प्रेस, भेलूपुर, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : बिमल कुमार